शमशेर और त्रिलोचन की ग़ज़लों का तुलनात्मक अध्ययन

एम.फिल. (हिंदी) उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध

शोध निर्देशक

डॉ. गोबिंद प्रसाद

शोधकर्ता

शहजाद आलम

भारतीय भाषा केंद्र

भाषा, साहित्य और संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली – 110067

2012

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY

Centre of Indian languages
School of language, literature and cultural studies
New delhi-110067, INDIA

Dated: 27 July, 2012

DECLARATION

I hereby declare that the work done in this M.Phil Dissertation entitle "*Shamsher Aur Trilochan ki Ghazalon Ka Tulanatmak Adhyayan* (A comparative Study of Shamsher and Trilochan's Ghazals)" by me is an original work and it has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/Institution.

SHAHJAD ALAM
(Research Scholar)

Dr. GOBIND PRASAD
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

Prof. RAM BUX JAT
(Chairperson)
CIL/SLL&CS/JNU

भूमिका

ग़ज़ल एक अत्यंत लोकप्रिय काव्य विधा है। यह विधा अरबी से फ़ारसी में आई और इसने अपनी लोकप्रियता तभी से हासिल कर ली। फ़ारसी में बड़े पैमाने पर ग़ज़लें लिखी गईं। फ़ारसी से ही यह विधा उर्दू में आई। उर्दू के प्रारंभिक शायर फ़ारसी के भी ज्ञाता थे और वे फ़ारसी में भी लिखते थे। तभी से उर्दू में ग़ज़ल का चलन शुरू हुआ। उर्दू में ग़ज़ल विधा ने बहुत ख्याति प्राप्त की। उर्दू के बड़े–बड़े शायरों जैसे वली दक्कनी, मीर, सौदा, ग़ालिब से लेकर आधुनिक शायरों जैसे फ़िराक, सरदार जाफ़री, फ़ैज़, साहिर, कैफ़ी आज़मी और फिर मौजूदा दौर के उर्दू शायरों ने उर्दू ग़ज़ल को जिस मुक़ाम पर पहुँचा दिया है, वह मुकाम साहित्य की बहुत कम विधाओं को ही हासिल हो पाता है।

ग़ज़ल आज हर ख़ासोआम के दिल में पैठ जमा चुकी है। ग़ज़ल में मनोभावों को सूक्ष्म रूप में अभिव्यक्त करने की अद्‌भुत क्षमता है। इसमें शब्दों की नफ़ासत, नज़ाकत के साथ–साथ भाषा की लोच और इसकी संगीतात्मकता कुछ ऐसे तत्व हैं, जिनके कारण यह हर ख़ासोआम के दिल के अंदर तक आसानी से जगह बना लेती है। उर्दू के क्लासिक शायरों के साथ–साथ ज़दीद शायरों तक की उम्दा ग़ज़लें जनमानस के बीच एक ख़ास जगह रखती हैं।

प्रारंभ में ग़ज़लों में केवल आशिक़–माशूक़ वार्तालाप से संबंधित विषय ही जगह पाते थे। ग़ज़लों में प्रेम विषयक भावनाएं ही अभिव्यक्त की जाती थीं। आगे चलकर उर्दू के शायरों ने इस सांसारिक प्रेम को आध्यात्मिक प्रेम के रूप में परिवर्तित कर इसे परम ब्रह्म के साथ जोड़ कर अभिव्यक्त किया। इस तरह ग़ज़ल किसी न किसी रूप में प्रेम की ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनी रही। इसी कारण विभिन्न विद्वानों में इस विधा की आलोचना भी की। परंतु ग़ज़ल धीरे–धीरे इससे मुक्त हो अपना विकास करती हुई आगे बढ़ती रही। इसने अपने को युगबोध के अनुरूप ढाला और स्वयं को सामाजिक सरोकारों से भी जोड़ा।

उर्दू ग़ज़ल के प्रभाव स्वरूप हिंदी में भी ग़ज़ल लेखन प्रारंभ हुआ। भारतेंदु में हम विधिवत रूप से ग़ज़ल विधा का आरंभ देख सकते हैं। अपने आरंभिक दौर में हिंदी ग़ज़ल पर उर्दू ग़ज़ल का ही प्रभाव था। उसे अपनी स्वयं की जमीन की तलाश थी, इसलिए आरंभ में हिंदी में उर्दू ग़ज़ल की ज़मीन पर खड़े होकर ग़ज़लें लिखी गईं। परंतु धीरे–धीरे हिंदी ग़ज़ल ने अपने लिए कथ्य और संवेदना के नए धरातल को तलाश कर लिया है। हिंदी ग़ज़ल ने अपने को आधुनिक बोध से जोड़ा है। हिंदी ग़ज़ल हिंदी के काव्य से, उसकी सोच से, उसके मुहावरे से अनुप्राणित है। समकालीन समाज और जीवन के यथार्थ को हिंदी ग़ज़ल ने अपनी संवेदना का अंग बनाया है। समकालीन परिवेश के प्रति जागरूकता पैदा करना तथा आम आदमी के दुख, दर्द, पीड़ा को वाणी देने की ललक तथा छटपटाहट हिंदी ग़ज़ल की विशेषता है। हिंदी ग़ज़ल ने अपने कथ्य और जमीन की तलाश करते हुए समकालीन समय की सच्चाइयों के साथ सीधा साक्षात्कार किया हैं। हिंदी ग़ज़ल को हम वर्तमान समय की विसंगतियों का आईना कह सकते हैं। इसमें जीवन–जगत से जुड़ी समस्याओं, अंतर्विरोधों, विडंबनाओं, विसंगतियों और संघर्ष की चेतना को अभिव्यक्त किया गया है।

हिंदी ग़ज़ल को समसामयिक रूप एवं तेवर देने में दुष्यंत कुमार का महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने हिंदी ग़ज़ल को बुलंदियों पर पहुँचाया। उन्होंने हिंदी ग़ज़ल को नए मुहावरे, नए बिंब, नए प्रतीकों के साथ–साथ राजनीतिक चेतना से भी समृद्ध किया। दुष्यंत ने हिंदी ग़ज़ल को समाज के सभी वर्गों में लोकप्रिय बना दिया। उनकी ग़ज़लों का प्रभाव आने वाले रचनाकारों पर पड़ा और एक पूरी की पूरी पीढ़ी हिंदी ग़ज़ल लेखन की ओर उन्मुख हुई। न जाने कितने रचनाकारों ने दुष्यंत से प्रेरणा पाकर ग़ज़लें कहनी शुरू कर दीं।

लेकिन इसे भी नहीं भूला जाना चाहिए कि दुष्यंत से पूर्व के हिंदी ग़ज़लकारों ने दुष्यंत को वह भूमि तैयार कर के दी, जिस पर खड़े होकर दुष्यंत हिंदी ग़ज़ल को बुलंदियों पर लेकर गए। शमशेर और त्रिलोचन ऐसे ही ग़ज़लकार हैं, जिन्होंने हिंदी ग़ज़ल को नए क्षितिज और नई रोशनी प्रदान की है। हिंदी ग़ज़ल के विकास में उनका

महत्वपूर्ण योगदान था। हालाँकि शमशेर और त्रिलोचन दोनों अलग–अलग तरह के ग़ज़लकार रहे हैं। शमशेर उर्दू की परंपरागत ग़ज़लों की रोशनी में ग़ज़ल कहते हैं। उनकी ग़ज़लों पर क्लासिक उर्दू ग़ज़ल का रंग देखने को मिलता है। उनकी ग़ज़लें भाषाई, शिल्पगत और कथ्यगत तौर पर उर्दू ग़ज़ल से प्रभावित हैं। दरअसल शमशेर ही ऐसे कवि हैं जिन्होंने हिंदी के पाठकों को वास्तव में ग़ज़लों से जोड़ा। उनकी ग़ज़लों में प्रेम के कोमलतम मनोभाव, भाषा की लोच और उर्दू ग़ज़लों के शिल्प विधान का निर्वाह देखने को मिलता है। इनकी ग़ज़लों पर मीर, ग़ालिब, इक़बाल और फ़ैज आदि उर्दू के बड़े शायरों का प्रभाव दिखाई देता है। वास्तव में शमशेर ने अपनी ग़ज़लों में हिंदी और उर्दू के बीच एक सेतु का कार्य किया है।

इसके विपरीत त्रिलोचन की ग़ज़लें हिंदी के अपने संस्कार की ग़ज़लें हैं। उन्होंने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से हिंदी ग़ज़ल को उसकी भाषा, उसके मुहावरे से परिचित कराया है। उनकी ग़ज़लों में हिंदी का भाषायी संस्कार है। उनकी ग़ज़लें अपनी मिट्टी से जुड़ी हुई हैं। उनके काव्य संस्कार, उनका चिंतन, उनकी उपमाएं, उनके प्रतीक, उनका संपूर्ण ग़ज़ल विधान हिंदी की ज़मीन से जुड़ा हुआ है। उनकी ग़ज़लों पर उर्दू की परंपरागत शायरी का प्रभाव नहीं है। उनकी ग़ज़लों में शिल्पगत उत्कृष्टता का भी अभाव है। दरअसल उनकी ग़ज़लें सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त करने का माध्यम रही है। उन्होंने ग़ज़ल को सामाजिक संदर्भों से जोड़ा। उनकी ग़ज़लों में लोकतत्व की विद्यमानता है। उनकी ग़ज़लों में जनपदीय माहौल देखने को मिलता है। दरअसल शमशेर ने ग़ज़ल के शिल्प को बचाने का प्रयास किया, वहीं त्रिलोचन ने उसे सामाजिक सरोकारों से जोड़ा।

मैंने अपने इस लघु शोध प्रबंध के माध्मय से हिंदी के दो महत्वपूर्ण कवियों शमशेर और त्रिलोचन की ग़ज़लों का तुलनात्मक रूप से अध्ययन करने और हिंदी ग़ज़ल में इन दोनों के योगदान एवं इनकी भूमिका को देखने का प्रयास किया है। मेरी कोशिश रही है कि मैं इन दोनों कवियों की ग़ज़लों का अध्ययन करके इनकी ग़ज़लों के उत्स

एवं संवेदना के धरातल को जान सकूं। इन दोनों कवियों की ग़ज़लों को तुलनात्मक रूप से देखने का यह मेरा विनम्र प्रयास है।

इस शोध प्रबंध के पहले अध्याय में मैंने आधुनिक हिंदी साहित्य के परिदृश्य को ग़ज़ल के संदर्भ में देखने का प्रयास किया है। आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रारंभ भारतेंदु से माना जाता है। इस समय भारत पर अंग्रेज़ों का शासन था, जिसका प्रभाव हिंदी साहित्य पर भी देखने को मिलता है। जहाँ अंग्रेज़ी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए आंदोलन हो रहे थे, वहीं अंग्रेज़ी शासन ने अपने स्वार्थ के लिए भारत में कुछ सुधार किए, जिसमें सबसे महत्वपूर्ण शिक्षा का प्रचार–प्रसार था। पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से भारतीय जनमानस में नवीन चेतना जागृत हुई, जिसके परिणामस्वरूप अंग्रेज़ी उपनिवेशवाद के ख़िलाफ़ आंदोलन और भी तेज़ हुए। भारतेंदु युग से पूर्व साहित्य में विशेषकर काव्य में रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ मौजूद थीं और साहित्यिक भाषा ब्रज थी जो आधुनिक विचारों को वहन करने में असमर्थ थी। भारतेंदु ने तब साहित्य में खड़ी बोली को स्थापित किया। इसी दौर में हिंदी में ग़ज़ल लेखन की भी शुरुआत हुई।

इसके बाद हिंदी में ग़ज़ल लेखन की एक पूरी परंपरा दिखाई देने लगती है। भारतेंदु के बाद के कवियों ने भी हिंदी में ग़ज़ल विधा को अपनाया। इसके बाद द्विवेदी युग में इस विधा को श्रीधर पाठक, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' आदि ने, छायावादी युग में जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने ग़ज़लें लिखीं। इसके उपरांत वर्तमान समय तक विभिन्न ग़ज़लकारों ने हिंदी ग़ज़ल विधा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस परंपरा को मैंने पहले अध्याय में कुछ कवियों के युगानुरूप उदाहरण देकर दिखाने का प्रयास किया है।

दूसरे अध्याय में ग़ज़ल की उत्पत्ति से लेकर उसके विभिन्न अंगों तक तथा हिंदी ग़ज़ल से संबंधित विभिन्न बहसों और दृष्टियों का आकलन किया गया है। 'ग़ज़ल' शब्द की उत्पत्ति के संबंध में कई अलग–अलग विचार सामने आते हैं। इसी तरह विधा के रूप में ग़ज़ल की उत्पत्ति के संबंध में भी एकाधिक विचार सामने आते हैं। अधिकतर

विद्वान इसे अरबी के कसीदे से जोड़कर देखते हैं तो कुछ विद्वान इसे ईरान के एक काव्य रूप 'चामा' से जोड़ते हैं। इसी अध्याय में ग़ज़ल के विभिन्न अंगों तथा ग़ज़ल के छंदशास्त्र यानी बहरों के विषय में बताने का प्रयास किया गया है।

इसी अध्याय में हिंदी ग़ज़ल से संबंधित विभिन्न प्रकार की बहसों और दृष्टियों पर भी चर्चा की गई है। इसमें हिंदी ग़ज़ल के नामकरण से लेकर उसके शिल्प विधान, उसकी वर्तमान स्थिति तथा उसके भविष्य तक कई मुद्दों पर विभिन्न विद्वानों के दृष्टिकोणों को रखा गया है। इसी में हिंदी ग़ज़ल को उर्दू की परंपरा से काटकर देखने वाले दृष्टिकोणों का भी विवेचन किया गया है।

अध्याय तीन में मैंने त्रिलोचन और शमशेर की ग़ज़लों की संवेदना के स्वरूप का आकलन विभिन्न स्तरों पर किया गया है। इसमें यह देखने का प्रयास किया गया है कि किन संवेदनाओं से त्रिलोचन और शमशेर की ग़ज़लें निर्मित हो रही थीं। वह कौन–से भावनात्मक धरातल हैं जिनसे त्रिलोचन और शमशेर की ग़ज़लें आकार ग्रहण करती हैं। ऐसे कौन–से विषय हैं, जो इनकी ग़ज़लों में व्यक्त हुए हैं।

इस आधार पर त्रिलोचन और शमशेर की ग़ज़लों का आकलन करने से ज्ञात होता है कि त्रिलोचन और शमशेर दोनों का ग़ज़ल कहने का उद्देश्य अलग–अलग था। इसलिए दोनों की ग़ज़लों की संवेदना भी काफी भिन्न है। त्रिलोचन हिंदी ग़ज़लों के माध्यम से हिंदी में ग़ज़ल के लिए ज़मीन की तलाश करने का प्रयास करते हैं। इनकी ग़ज़लों में त्रिलोचन के व्यक्तित्व एवं उनके काव्य की भांति सादगी, सरलता और सहजता देखने को मिलती है। उनमें ग़ज़ल का परंपरागत सौंदर्य नहीं मिलता।

इसके विपरीत शमशेर की ग़ज़लों में परंपरागत उर्दू शायरी जैसी शोखी एवं रूमानियत है। शमशेर की ग़ज़लों में अधिकतर विषयगत तौर पर उर्दू ग़ज़लों से ही समानता दिखाई देती है। शमशेर ने ग़ज़ल को हिंदी से रू–ब–रू कराया, उसके अपने क्लासिकी अंदाज़ में उन्होंने ग़ज़ल के रूमानी स्वभाव के साथ कोई छेड़छाड़ नहीं की। इसी कारण इनकी ग़ज़लों की संवेदना का धरातलत त्रिलोचन से भिन्न प्रकृति का है।

अध्याय चार में मैंने त्रिलोचन और शमशेर की ग़ज़लों के शिल्प–सौंदर्य का आकलन करने का प्रयास किया है। इस अध्याय में त्रिलोचन और शमशेर की भाषा पर भी विचार किया गया है। त्रिलोचन ग़ज़ल को हिंदी की प्रकृति में ढालने का प्रयास करते हैं, इसलिए उनकी ग़ज़लों में हिंदी की ठेठ भाषा और उसके मुहावरों का ही प्रयोग किया गया है। इसी कारण उनकी ग़ज़लों में ग़ज़ल के नाजुक शिल्प के अनुसार भाषा का प्रयोग देखने को नहीं मिलता। उनकी ग़ज़लों में भाषागत प्रयोग अधिक देखने को मिलते हैं। इससे उनकी ग़ज़लों का सौंदर्य भंग हुआ है।

शमशेर की ग़ज़लों की भाषा उर्दू मिश्रित आम बोलचाल की भाषा है। उन्होंने अपनी ग़ज़लों में उर्दू ग़ज़ल के परंपरागत शिल्प का अनुसरण किया है। उनकी ग़ज़लों में उर्दू–फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग हुआ है। साथ ही उन्होंने उर्दू के प्रचलित मुहावरों का भी प्रयोग अपनी ग़ज़लों में किया है। इनकी ग़ज़लों में प्रयोग करने की प्रवृत्ति देखने को नहीं मिलती। इनकी ग़ज़लों में भाषा की लोच, उसकी रवानी ग़ज़ल की नाजुक विधा के अनुरूप ही है। इनकी ग़ज़लों में उर्दू ग़ज़ल की भांति सांकेतिकता का प्रयोग भली प्रकार किया गया है। शमशेर ने मतला, मक़ता, रदीफ, काफिया का बखूबी पालन किया है। इसकी ग़ज़लों में बहर संबंधी दोष भी कम ही देखने को मिलते हैं। इन्होंने ग़ज़लों के परंपरागत सौंदर्य को भंग नहीं होने दिया है।

यह लघु शोध प्रबंध केवल मेरे ही परिश्रम का परिणाम नहीं है। इसमें विभिन्न लोगों का योगदान प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से रहा है। इस रूप में मैं इसे एक साझा प्रयास ही कहना चाहूँगा। मेरे व्यक्तिगत विकास तथा मुझे जे.एन.यू. तक पहुँचाने से लेकर विषय के चुनाव और इस शोध प्रबंध को इस रूप में लाने तक अनेक लोगों ने योगदान दिया है। आज मैं इस शोध प्रबंध को पूरा करने में सक्षम हो पाया हूँ तो उन सभी लोगों के परिश्रम और सहयोग के कारण ही ऐसा हो सका है। यहाँ उनके नामों का उल्लेख भर करने से उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट नहीं की जा सकती। उनके सहयोग को महज़ शब्दों में व्यक्त कर पाना तो और भी असंभव है और यहाँ इसके विषय में बताना महज़ एक औपचारिकता ही होगी।

किसी भी व्यक्ति के विकास के लिए जितने लोग नज़र आते हैं, उनसे भी अधिक ऐसे लोगों का योगदान होता है जो सामने दिखाई तो नहीं देते, परंतु छोटी–से–छोटी चीज़ों से उसके जन्म से लेकर उसकी मृत्यु तक उनकी भूमिका बनी रहती है। चूंकि ऐसे अप्रत्यक्ष सहयोगियों की गणना करना नामुमकिन है, परंतु उनके सहयोग को नकारा नहीं जा सकता मैं ऐसे सभी लोग का आभार व्यक्त करता हूँ।

मैं उच्च शिक्षा प्राप्त कर पाया और यह लघु शोध प्रबंध पूरा कर पाया, सही अर्थों में तालीम हासिल कर पाया, इसमें सबसे बड़ी भूमिका मेरी 'अम्मी' और मेरे 'पापा' की रही है। उन्होंने पढ़ाई–लिखाई की अहमियत को समझा और मुझे स्कूल भेजने का फैसला किया।

मेरी छोटी बहन रुबीना, जिसे हम परिवार के लोग गुड़िया बुलाते हैं, न जाने कब जीवन की चुनौतियों का सामना करते–करते मेरी मित्र में बदल गई। वह मेरे द्वारा कुछ कहे बिना भी सब समझ जाती है। परिवार की सब मुश्किलों में तथा स्वयं मेरी ज़िंदगी के द्वंद्वों और मेरी मुश्किलों में मेरे साथ खड़ी रहती है। उसके साथ के बिना शायद यह कार्य संभव नहीं हो पाता। एम.ए. करने के बाद मैं पढ़ाई से एकदम दूर ही हो गया था। यह उसके और भारती के प्रयासों का ही नतीजा है कि मैं एम.फिल. में दाख़िला ले पाया और इस शोध प्रबंध को पूरा कर पाया।

मेरे जीवन के सुख–दुख, उसके संघर्षों की भागीदार मेरी जीवनसाथी भारती की भूमिका न केवल इस शोध प्रबंध को पूरा करने में रही है, बल्कि मुझे भी पूर्ण करने में उसकी अहम भूमिका है। उसके सहयोग के बिना इस स्तर तक पहुँचने की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था। कितनी बार मुझे लगा कि मैं यह नहीं लिख पाऊँगा, परंतु यह उसका ही प्रयास है कि यह शोध प्रबंध पूरा हो सका। उसने विषय संबंधी कई अहम बिंदुओं की तरफ़ मेरा ध्यान खींचा, जो मेरे शोध को विकसित करने में सहायक बने। इस शोध प्रबंध को पूरा करने की व्यस्तता के दौरान उसने अम्मी–पापा और पूरे परिवार का भी ख़याल रखा।

मैं अपने छोटे भाई–बहनों साज़िद (गुड्डू), उसकी साथी आस्माँ, नाज़िम (सोनू), आदिल, अशरा (आशू), जुनैद (पाली) और कामरान को भी यहाँ याद करना चाहता हूँ कि जिनके साथ रहकर मैं अपने को जीवंत रख पाता हूँ। दरअसल यह सभी इतने ज़िंदादिल हैं कि उनके साथ रहकर सारी चिंताएँ काफूर हो जाती हैं। साथ ही ये सभी बहुत समझदार और ज़िम्मेदार भी हैं।

जब आपके जीवन में आपका कोई साथी बनता है तो उस साथी का परिवार भी आपका अपना परिवार हो जाता है। इस रूप में मेरे इस दूसरे परिवार का सहयोग भी मेरे शोध को पूरा करने में रहा। भैया–भाभी की उत्सुकता मेरे शोध को लेकर लगातार बनी रही, भाभी समय–समय पर मुझे जल्दी अपना कार्य पूरा करने के लिए प्रोत्साहित करती रहीं। पूजा, चित्रा और मुकुल इतने ऊर्जावान हैं कि वे अपनी ऊर्जा से सामने वाले को भी जीवंत बना देते हैं। ख़ासकर पूजा तो मेरे शोध के प्रति भी विशेष रूप से उत्सुक रही।

आज जब यह शोध कार्य पूरा हो गया है तो मुझे अपने पुराने बिछुड़े मित्र गुरमीत की भी याद आ रही है। याद आ रहा है उसका वह सहयोग जो समय–समय पर मुझे मिलता रहा था। वह मेरे बचपन का ऐसा साथी था, जिसके कारण मेरा रूझान साहित्य की ओर हुआ। बारहवीं के बाद तो मैं नियमित कॉलेज करना ही नहीं चाहता था। उसी की ज़िद के कारण मैंने नियमित कॉलेज में दाख़िला लिया, जिसके बाद मेरे जीवन में कई परिवर्तन आए। गुरमीत स्वयं हिंदी साहित्य का छात्र था, वह भी एम.ए. करना और उससे भी आगे उच्च शिक्षा हासिल करना चाहता था। परंतु आज वह हमारे बीच नहीं है। इस समाज ने उसके सामने ऐसी परिस्थितियाँ बना दीं कि उसने अपने जीवन को ही समाप्त कर लिया। उसे मेरे साथ न होने का मुझे हमेशा दुख रहेगा परंतु मैं उसके सहयोग और उसकी मित्रता को जीवन भर नहीं भुला पाऊँगा।

मेरे विचारधारात्मक विकास से लकर मेरी मुश्किलों और इस शोध प्रबंध को पूरा करने तक में मेरे विभिन्न मित्रों का भी सहयोग रहा है। प्रकाश, विजय अशोक, अनील,

जीवन, सुनील, गीता और नरेश मेरे ऐसे ही मित्र हैं, जो मेरे इस शोध प्रबंध के विषय में उत्सुक रहे हैं। सुनील मांडीवाल और लक्ष्मी मेरे ऐसे मित्र रहे हैं जिन्होंने मुझे भावनात्मक रूप से लेकर विचारधारात्मक रूप तक समय–समय पर अपना सहयोग दिया है। सुनील मांडीवाल, जिन्हें मैं मित्र के साथ–साथ एक बड़े भाई के रूप में भी देखता हूँ, वे जबसे मेरी ज़िंदगी में जुड़े हैं तभी से उन्होंने मेरे विकास में अपना योगदान दिया। मेरी मुश्किलों में वे मेरे साथ खड़े रहे। उन्होंने अपने परामर्श से इसे बेहतर बनाने में अपना सहयोग दिया है। हिंदी साहित्य के प्रति मेरे रूझान को विकसित करने में भी सुनील मांडीवाल का विशेष योगदान रहा है।

अर्जुन प्रसाद सिंह और गुरमीत जी ने मेरे विचारधारात्मक विकास के साथ–साथ अपने विचारों से मेरी सामाजिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक समझ को परिष्कृत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

अनु और गोपाल, मेरे लिए बड़े भाई यानी 'दादा', से मुझे अपने काम के प्रति लगन विकसित करने की प्रेरणा मिलती रही। जिस तरह यह दोनों किसी भी कार्य के प्रति ईमानदारी और लगन रखते हैं, उससे अपने कार्य के प्रति ईमानदारी और लगन से लगे रहने की प्रेरणा मिलती रही है।

इस शोध कार्य के दौरान मेरे मित्र रेयाज़ ने इस शोध से संबंधित कई पुस्तकें मुहैया कराईं। उसकी तकनीकी मदद भी मुझे मिली और इस शोध कार्य को आकार देने में उसका महत्वपूर्ण योगदान रहा।

इस शोध कार्य के दौरान मुझे रोहित शर्मा और मेरे मित्र ललित का भी सहयोग मिलता रहा, जिन्होंने मुझे यह कार्य करने के लिए अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराने में विशेष योगदान दिया।

मैं अपने शोध निर्देशक डॉ. गोबिंद प्रसाद का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके उचित निर्देशन में मैंने यह शोध कार्य किया। उन्होंने इस शोध कार्य के दौरान मुझे अपने बहुमूल्य परामर्श दिए, साथ ही उचित निर्देशन तथा वैचारिक स्वतंत्रता प्रदान

की। पारिवारिक दिक्कतों में व्यस्त होने के कारण मुझे उनके सान्निध्य में रहकर अपने को समृद्ध करने का अपेक्षाकृत कम समय मिल पाया, परंतु इसके बावजूद उन्होंने मुझे अपना पूर्ण सहयोग दिया। इसी वजह से यह शोध कार्य पूरा करने में मैं सफल हो सका। उनके कुशल निर्देशन में मुझे कभी भी किसी प्रकार के दबाव का, अकादमिक सीमाओं का अहसास नहीं हुआ। उनके द्वारा उपलब्ध कराए गए सहयोगी वातावरण में मैं यह शोध प्रबंध सहजता और सरलता के साथ पूरा कर सका। उनका भरपूर स्नेह मुझे इस कार्य के दौरान मिलता रहा है। उनके स्नेह के प्रतिदान की कल्पना करना भी उसके महत्व को कम करना होगा।

इस शोध को पूरा करने में इन सब लोगों का भरपूर सहयोग मुझे मिलता रहा है। यदि मैं उनकी आकांक्षाओं पर खरा नहीं उतर सका हूँ या इस शोध में कोई त्रुटि रह गई है, जो संभव है, तो इसके लिए उनके सहयोग की कमी नहीं बल्कि मैं ज़िम्मेदार हूँ।

शहजाद आलम

भारतीय भाषा केंद्र

भाषा, साहित्य और संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली–110067

अम्मी और पापा को

क्रम

भूमिका *i-x*

पहला अध्याय

आधुनिक हिंदी साहित्य का परिदृश्य और ग़ज़ल: भारतेंदु से अब तक 1-38

दूसरा अध्याय

हिंदी ग़ज़ल संबंधी बहसें और दृष्टियां 39- 77

तीसरा अध्याय

त्रिलोचन और शमशेर की ग़ज़लों में संवेदना का स्वरूप 78-120

चौथा अध्याय

त्रिलोचन और शमशेर की ग़ज़लों का शिल्प-सौंदर्य 121-158

उपसंहार 159-169

संदर्भ ग्रंथ सूची 170-176

□ पहला अध्याय

आधुनिक हिंदी साहित्य का परिदृश्य और ग़ज़ल

भारतेंदु से अब तक

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल का आरंभ भारतेंदु से माना जाता है। आधुनिक काल के इस प्रथम चरण को भारतेंदु युग के नाम से जाना जाता है। भारतेंदु का रचनाकाल 1850 ई. से 1885 ई. तक रहा है। यह वह समय था जब भारत पर अंग्रेज़ी शासन पूरी तरह स्थापित हो चुका था। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम को अंग्रेज़ों ने बुरी तरह कुचल दिया। इसके बाद भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन समाप्त हो गया और समूचा भारत अंग्रेज़ी साम्राज्य की छत्रछाया में आ गया। यह काल अशांति और उलझन का काल था। अशांति इसलिए कि पूरे भारत में अंग्रेज़ी शासन व शोषण के ख़िलाफ़ आंदोलन हो रहे थे। वहीं दूसरी तरफ़ उलझन थी क्योंकि भारत को अंग्रेज़ी विक्टोरिया के साम्राज्य में मिलाने से 1860 के बाद देश में एक प्रकार की शांति और व्यवस्था कायम हो गई। देश में यातायात के साधन सुलभ हो गए, प्रेस की स्थापना हो गई और बड़ी मात्रा में पत्र–पत्रिकाएँ निकलने लगीं। भारत के लोग पश्चिमी विचारों के संपर्क में आए, शिक्षा का प्रचार–प्रसार हुआ। इन तमाम कारणों से एक उलझन–सी पैदा हो गई कि अंग्रेज़ी शासन का विरोध किया जाए या नहीं। यह उलझन भारतेंदु के समय में हमें उनके तथा उनके समकालीन साहित्यकारों की रचनाओं में देखने को मिलती है। जैसे–

अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।[1]

इस नवीन विदेशी शासन के संपर्क से भारत में एक नवीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं साहित्यिक चेतना का आविर्भाव होता है। पूर्व–पश्चिम के सांस्कृतिक संपर्क से जो नई चेतना उत्पन्न हो रही थी और उससे

जिस विचार स्वातंत्र्य का जन्म हो रहा था उसके प्रभाव से हमारे साहित्य ने रूढ़ि के बंधनों को तोड़, विकास की एक नई दिशा में प्रवेश किया। परिणामतः हमारे साहित्य में विचार और भाव, शैली या शिल्पविधान और काव्यरूप सभी क्षेत्रों में अनिवार्य रूप से परिवर्तन आया। नवजागरण के युग में समाज की बदलती हुई मनोवृत्तियों के साथ आधुनिक जनवादी साहित्य में नवीन प्रवृत्तियों का समावेश हुआ।

इस नवीन चेतना और पाश्चात्य शिक्षा के परिणामस्वरूप भारत में उपनिवेश–विरोधी चेतना भी जागृत हुई। यह नवीन चेतना उपनिवेशवाद के लिए घातक सिद्ध हुई। भारत में अंग्रेज़ी उपनिवेशवादी शासन के ख़िलाफ़ आंदोलन तेज़ होने लगे, जिसका परिणाम साहित्य में भी परिलक्षित होने लगा।

''भारतेंदु युग के पूर्व कविता में रीतिकालीन प्रवृत्तियां विद्यमान थीं। अतिशय श्रृंगारिकता, अलंकार मोह, रीति निरूपण एवं चमत्कारप्रियता के कारण कविता जन–जीवन से कट गई थी। देशी रियासतों के संरक्षण में रहने वाले कविगण रीतिकाल के व्यामोह से न तो उबरना चाहते थे और न ही उबरने का प्रयास कर रहे थे। ऐसी परिस्थितियों में भारतेंदु का काव्य क्षेत्र में पदार्पण वस्तुतः आधुनिक हिंदी काव्य के लिए वरदान सिद्ध हुआ। उन्होंने काव्य क्षेत्र को आधुनिक विषयों से संपन्न किया।''[2] इसके साथ ही उन्होंने इसे नवीन चेतना से अवगत कराया।

भारतेंदु के समय में काव्य की भाषा ब्रजभाषा थी चूंकि आधुनिककाल से पहले साहित्य में गद्य का आज जैसा प्रचलन नहीं था इसलिए उस समय ब्रज भाषा में गद्य साहित्य की परंपरा का अभाव देखने को मिलता है। हालांकि ब्रजभाषा और राजस्थानी में गद्य साहित्य मिल जाता है, परंतु वह उतना प्रभावशाली गद्य साहित्य नहीं है। देश का यूरोप से संपर्क होने से एक नवीन युग आरंभ हुआ। यहां की जनता का परिचय पश्चिम के आधुनिक विचारों से हुआ, जिसने जनता के बीच वैचारिक परिवर्तन को तेज़ किया। इसलिए इन विचारों को वहन करने के लिए भाषा का वह रूप चाहिए था जिसकी पहुंच आम लोगों के वृहद समूह तक हो। इसलिए भारतेंदु ने गद्य में खड़ी बोली का प्रयोग किया और गद्य की अनेक विधाओं

का सूत्रपात किया। उन्होंने पत्र–पत्रिकाओं का संपादन किया जिनके माध्यम से वे अपने विचार आम जनता तक पहुंचाने लगे। इस दौर में खड़ी बोली का विकास हो रहा था और वह साहित्य की गद्य विधाओं में अपने पैर जमा रही थी। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार ''उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में वास्तविक रूप में हिंदी गद्य का सूत्रपात हुआ। इस समय तक साहित्य में ब्रजभाषा का ही प्राधान्य था और उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक और कुछ और बाद तक भी कई पुस्तकों की टीकाएं ब्रजभाषा के गद्य में लिखी गईं। परंतु बोली में लिखा जाने वाला गद्य ही अंत तक साहित्य का महत्वपूर्ण और प्रभावशाली वाहन बना।''[3]

परंतु अब भी पद्य (काव्य) की भाषा ब्रज ही बनी हुई थी। भारतेंदु स्वयं ब्रजभाषा में कविता किया करते थे। उन्होंने खड़ी बोली में भी काव्य लेखन का प्रयास किया परंतु वह उन्हें उपयुक्त नहीं जान पड़ा। इसलिए उन्होंने ब्रजभाषा की पुरानी परिपाटी वाली काव्य रचना न करके ब्रजभाषा में ही नवीन संस्कारों वाली काव्य रचना कर उसे और समृद्ध किया।

डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार ''इस समय हिंदी साहित्य एक विचित्र द्विभागीकृत (डाइकोटोमी) स्थिति से गुजर रहा था – गद्य की भाषा खड़ी बोली और पद्य की ब्रज। दूसरी भाषा के साहित्य में इस प्रकार का द्विभागीकरण नहीं था। चूंकि ब्रज में गद्य की कोई स्वस्थ परंपरा नहीं बन सकी थी इसलिए खड़ी बोली को अपनाने में कोई असुविधा नहीं हुई। लेकिन काव्य की एक लंबी परंपरा जो ब्रजभाषा में उपलब्ध थी, उसे सहसा नहीं छोड़ा जा सकता था। अतः कुछ छिटपुट भक्तिपरक रचनाओं को छोड़कर कविता में रीतिकालीन प्रवृत्ति चल रही थी। यह भी एक प्रकार का अंतर्विरोध ही था – गद्य में नई राजनीतिक, सामाजिक चेतना की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ रही थी तो पद्य में समस्यापूर्ति, नायिका–भेद, षट्ऋतु वर्णन, नख–शिख वर्णन की अनुगूँज। गद्य में नयी–नयी साहित्यिक विधाएं विकसित हो रही थीं तो पद्य में कवित्त, सवैये का परिपाटी ग्रस्त रूप।''[4]

इस तरह ब्रजभाषा में भी काव्य परपंरा दो धाराओं में बँटी दिखती है। एक ब्रजभाषा की पुरानी काव्य परंपरा है, जो कि रीतिवादी परिपाटी पर चली आ रही

है। इस काव्य परंपरा के कवियों का खड़ी बोली गद्य से कोई संबंध नहीं था और वह पुराने ढंग की ब्रजभाषा की काव्य रचना कर रहे थे। इस पुराने ढंग की काव्य परंपरा के कवि थे– महाराज रघुराज सिंह, सेवक, सरदार, बाबा रघुनाथ दास, बेनी द्विज, लछिराम, ललित किशोरी, राजा लक्ष्मण सिंह आदि।

दूसरे प्रकार की काव्य परंपरा नई धारा की दिखती है। आचार्य शुक्ल के अनुसार ''इस नए रंग में सबसे ऊँचा स्वर देशभक्ति की वाणी का था। उसी से लगे विषय लोकहित, समाजसुधार, मातृभाषा का उद्धार आदि थे।''[5] इस नई धारा के कवियों ने ब्रजभाषा के काव्य को न केवल विषयों की विविधता प्रदान की बल्कि उसे नई चेतना से अवगत कराया। इस दूसरे प्रकार की धारा में भारतेंदु मंडल के लोग थे जो खड़ी बोली गद्य से जुड़े हुए थे तथा नए पाश्चात्य विचारों के संपर्क में भी थे। इनमें भारतेंदु, सुमेर सिंह, पं. बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', प्रतापनारायण मिश्र, जगमोहन सिंह, अंबिका दत्त व्यास, राधाकृष्ण वर्मा, राधाचरण गोस्वामी, सुधाकर द्विवेदी, राधाकृष्ण दास आदि थे।

इस प्रकार भारतेंदु युग में गद्य और पद्य की भाषा का यह भेद बना रहा। ब्रजभाषा में भी पुरानी और नई दोनों तरह की काव्य धाराएं मौजूद रहीं। भारतेंदु ने जहाँ एक ओर ब्रजभाषा के काव्य को आधुनिकता से जोड़ा वहीं उन्होंने खड़ी बोली गद्य का भी परिष्कार किया।

खड़ी बोली आगरा–दिल्ली के आसपास बोली जाती थी। हिंदी साहित्य पर इसका प्रभाव हमें शुरू से देखने को मिलता है। सिद्धों और जैनों के साहित्य में हमें इसके चित्र दृष्टिगोचर होते हैं। वस्तुतः अमीर खुसरो खड़ी बोली हिंदी के आदिकवि माने जाते हैं। परंतु खड़ी बोली इसके बहुत पहले से से विद्यमान थी। इस संबंध में रामचंद्र शुक्ल का कहना है कि ''किसी भाषा का साहित्य में व्यवहार न होना इस बात का प्रमाण नहीं है कि उस भाषा का अस्तित्व ही नहीं है। उर्दू का रूप प्राप्त होने के पहले भी खड़ी बोली अपने देशी रूप में वर्तमान थी।''[6] परंतु भारतेंदु से पहले साहित्य में जिस प्रकार की खड़ी बोली का प्रयोग किया जा रहा था वह खड़ी बोली का उर्दू रूप था जिसमें साहित्य सर्जन हो रहा था।

रामचंद्र शुक्ल के अनुसार ''देश के भिन्न–भिन्न भागों में मुसलमानों के फैलने तथा दिल्ली की दरबारी शिष्टता के प्रचार के साथ ही दिल्ली की खड़ी बोली, समुदाय के परस्पर व्यवहार की भाषा हो चली थी। खुसरो ने विक्रम चौदहवीं शताब्दी में ही ब्रजभाषा के साथ–साथ खालिस खड़ी बोली में कुछ पद्य और पहेलियाँ बनाई थीं। औरंगज़ेब के समय से फ़ारसी मिश्रित खड़ी बोली या रेख्ता में शायरी भी शुरू हो गई और उसका प्रचार फ़ारसी पढ़े–लिखे लोगों में बराबर बढ़ता गया। इस प्रकार खड़ी बोली को लेकर उर्दू साहित्य खड़ा हुआ।''[7] भारत में जब मुग़लों का शासन था, तो उत्तर भारत में लगभग छह सौ वर्षों तक फ़ारसी राजभाषा के रूप में रही। इसके परिणाम स्वरूप ''फ़ारसी के सैकड़ों शब्द न केवल हिंदी में बल्कि बांग्ला, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में घुल–मिल गए। इसका कारण यह नहीं था कि आम मुसलमानों की भाषा फ़ारसी थी, कारण यह था कि फ़ारसी राजभाषा थी। नौकरी के लिए हर हिंदू–मुसलमान के लिए उसका ज्ञान ज़रूरी था। फ़ारसी के ज्ञान से मनुष्य विद्वान समझा जाता था, समाज में इसका आदर होता था। फ़ारसी जानने वाले वर्ग ने जब खड़ी बोली में साहित्य रचना की, तो स्वभावतः उसने उच्च शब्दावली फ़ारसी से ली। जो क्षेत्र दिल्ली से दूर थे, वहां के साहित्य पर फ़ारसी शब्दावली का प्रभाव कम पड़ा। जो साहित्य दिल्ली और लखनऊ में रचा गया, उसमें फ़ारसी शब्दावली का आधिक्य रहा।''[8] इस तरह उर्दू ने आकार ग्रहण करना शुरू किया और मुग़ल साम्राज्य के पतनकाल में खड़ी बोली के इस साहित्यिक रूप यानी उर्दू का विकास हुआ। इस भाषा ने बहुत ही कम समय में बड़ी तरक्की हासिल कर ली थी। साहित्यिक रूप से भी यह भाषा समृद्ध हो रही थी। इसमें वली दक्कनी, मीर, सौदा, दर्द, नज़ीर अकबराबादी, ग़ालिब आदि जैसे बड़े–बड़े शायर हुए जिन्होंने उर्दू साहित्य को नई बुलंदियों पर पहुंचा दिया।

दरअसल दिल्ली के जो शुरुआती उर्दू शायर थे, पहले वह फ़ारसी के शायर थे, उर्दू के बाद में। इसलिए उनकी शायरी में हिंदी शब्दों के बजाए फ़ारसी शब्द अधिक होते थे। यह फ़ारसी से उर्दू भाषा में बदलाव का शुरुआती दौर था इसलिए ऐसा होना स्वाभाविक था। अठारहवीं शताब्दी के शायरों ने ही दरअसल उर्दू भाषा को मौजूदा रूप दिया। मिर्ज़ा मजहर, जानजांवा, मिर्ज़ा रफ़ी 'सौदा', मीर तक़ी 'मीर',

'सोज़', 'दर्द', ग़ालिब, नज़ीर अकबराबादी आदि वह शायर हैं जिन्होंने उर्दू को मौजूदा सलाहियत और मिठास प्रदान की।

उन्नीसवी शताब्दी के आरंभिक दौर तक आते–आते उर्दू भाषा का विकास अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच चुका था। और उन्नीसवीं शताब्दी से पहले हिंदी और उर्दू के बीच ऐसा किसी प्रकार का झगड़ा या विवाद नहीं था जैसा कि इस दौर में खड़ा हुआ। इस दौर में अंग्रेज़ों ने अपने शासन को मजबूत करने के लिए हिंदी और उर्दू के बीच विवाद खड़ा किया। उन्होंने उर्दू को मुसलमानों की भाषा और हिंदी को हिंदुओं की भाषा से जोड़ा और दोनों भाषाओं को सांप्रदायिक रंग में रंग दिया।

हिंदी–उर्दू को अलगाने का योजनाबद्ध प्रयास कलकत्ता के फोर्ट विलियम कॉलेज की देख–रेख में आरंभ हुआ। ''ईस्ट इंडिया कंपनी ने प्रशासनिक सुविधा के लिए सन 1800 ई. में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की। इसमें हिंदी, मराठी, गुजराती, तमिल, आदि देशीय भाषाओं में सामान्यतः पुस्तकें अनूदित होती थी। हिंदी या हिंदुस्तानी के प्राध्यापक गिलक्राइस्ट थे। उर्दू के लिए अलग मुंशी नियुक्त हुए, भाखा या हिंदवी के लिए अलग। भाखा–मुंशियों के रूप में लल्लूजी लाल और सदल मिश्र की नियुक्ति हुई।''[9] इस फोर्ट विलियम कॉलेज और इसके भाखा–मुशियों ने हिंदी और उर्दू का अलग–अलग स्वरूप तैयार किया और दोनों को अलग करने की कोशिश शुरू हुई। जहां उर्दू में अरबी, फ़ारसी के शब्दों का अधिक प्रयोग किया वहीं हिंदी या खड़ी बोली के लिए संस्कृत भाषा का प्रयोग किया गया।

''खड़ी बोली' शब्द फोर्ट विलियम कॉलेज (1800 ईसवी) की टकसाल से निकला है। सबसे पहले कॉलेज के भाखा–मुंशी लल्लू लाल और सदल मिश्र ने इसका प्रयोग किया। सन 1804 में जान गिलक्रिस्ट ने 'द हिंदी–रोमन ऑर्थोग्रैफिक' में 'खड़ी बोली' शब्द का प्रयोग किया है। हो सकता है– दिल्ली–आगरे की बोलचाल की भाषा को खड़ी बोली कहा जाता रहा हो। लल्लूजी लाल और सदल मिश्र ने इसे वहीं से ले लिया हो।''[10] लल्लू लाल आगरा के रहने वाले एक

गुजराती ब्राह्मण थे। इससे पहले वह तीन किताबें उर्दू में लिख चुके थे। वह फ़ारसी और उर्दू के भी अच्छे ज्ञाता थे। इसके बाद उन्होंने फोर्ट विलियम कॉलेज की नौकरी करते समय अपनी प्रसिद्ध हिंदी किताब 'प्रेमसागर' लिखी। लल्लू लाल के 'प्रेमसागर' की भाषा कथा वार्ता के अनुरूप है। इसके शब्दरूप अनिश्चित, भाषा ब्रज रंजित, शैली पंडिताऊ है। इनके अलावा फोर्ट विलियम कॉलेज में ही बिहार के रहनेवाले सदल मिश्र ने हिंदी की दूसरी किताब 'नासिकेतोपाख्यान' लिखी। 'नासिकेतोपाख्यान' पर ब्रज और भोजपुरी का प्रभाव है। किंतु सीधे संस्कृत से अनूदित होने के कारण हिंदी की प्रकृति के अनुरूप है। फोर्ट विलियम कॉलेज के बाहर भी हिंदी भाषा को नया रूप देने में दो गद्य लेखकों का नाम सादर लिया जाता है, जिनमें सदासुख लाल और इंशाअल्ला खां हैं। इन्होंने हिंदी को नए रूप में ढालने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

लल्लू लाल और सदल मिश्र द्वारा खड़ी बोली का प्रयोग करने का कारण यह था कि एक तो वह फोर्ट विलियम कॉलेज के नौकर थे और उसकी अपनी औपनिवेशिक नीतियां भाषा को लेकर थीं। दूसरे, उर्दू के रूप में खड़ी बोली को आम सहमति प्राप्त हो चुकी थी और वह हिंदुओं और मुसलमानों दोनों में फैल चुकी थी। सभी पढ़े–लिखे हिंदू और लल्लू लाल और सदल मिश्र भी इसे जानते थे। इन्होंने खड़ी बोली को हिंदू धर्म और संस्कृति के अनुरूप ढाला और इस भाषा को ब्रज, अवधी और संस्कृत के मेल से एक नया रंग प्रदान किया। इस तरह उन्होंने खड़ी बोली को उर्दू से काफ़ी हद तक अलग कर दिया।

इस तरह धीरे–धीरे हिंदी और उर्दू भाषाएं अलग होती गईं। हिंदी जो देवनागरी लिपि में लिखी जाती थी, जिसमें संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग होता था, जबकि उर्दू फ़ारसी लिपि में लिखी जाती थी, जिसमें अरबी–फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग होता था। इस तरह दोनों भाषाएं अलग–अलग राह पकड़ अपना विकास करती रहीं।

ऐसे दौर में राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद (1823–1895) ने हिंदी भाषा और नागरी लिपि के पक्ष में जो भूमिका निभाई वह महत्वपूर्ण है। आरंभ में वह उर्दू

विरोधी थे और उसे विदेशी भाषा मानते थे। किंतु बाद में शिवप्रसाद का झुकाव अरबी–फ़ारसी से लदी उर्दू की ओर हो गया। दरअसल वह आमफ़हम की भाषा और नागरी लिपि के पक्षधर थे। इसलिए वह उर्दू मिश्रित हिंदी का प्रयोग करते थे। उनकी हिंदी में अरबी–फ़ारसी के शब्द ख़ूब मिलते हैं और ऐसा लगता है कि वह देवनागरी लिपि में उर्दू ही लिख रहे हैं। राजा शिवप्रसाद में यह परिवर्तन अंग्रेज़ों की उर्दूपरस्त नीति के कारण आया।

उनके बदले हुए दृष्टिकोण तथा उनके द्वारा निकाले जाने वाले 'बनारस अख़बार' की उर्दू प्रधान भाषा के विरोध में राजा लक्ष्मण सिंह (1826–1884) सामने आए। उन्होंने 1862 में 'अभिज्ञान शाकुंतलम' का विशुद्ध हिंदी में अनुवाद किया। परंतु इस तरह राजा लक्ष्मण सिंह की हिंदी भाषा विशुद्ध संस्कृतनिष्ठ हो गई। जो आम बोलचाल की भाषा से दूर थी।

भारतेंदु ने न तो राजा लक्ष्मण सिंह की संस्कृतनिष्ठ पद्धति को अपनाया और न ही राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद की उर्दूमयी भाषा की पद्धति को, बल्कि उन्होंने इस दिशा में मध्यमार्ग को चुन कर अपनी अद्‌भुत सामंजस्यात्मक प्रवृत्ति का परिचय दिया। यह प्रवृत्ति भारतेंदु मंडल के सभी साहित्यकारों में देखने को मिलती है। इन ''आधुनिक हिंदी के जन्मदाताओं ने अपने को इस संकीर्णता से बचाया कि वे फ़ारसी के प्रचलित शब्दों को अपने गद्य से निकाल दें। भारतेंदु, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त आदि उर्दू के अच्छे ज्ञाता थे। उर्दू में जब–तब लिखते भी थे और उनके हिंदी गद्य में फ़ारसी के सरल शब्दों का बहिष्कार नहीं किया गया। हिंदी भाषी प्रदेश की जनता के सांस्कृतिक विकास के लिए यह आवश्यक था कि यहां ऐसी साहित्यिक भाषा का प्रसार हो, जो जनपदीय बोलियों के निकट हो, जो सूर और तुलसी की साहित्यिक शब्दावली को अपने में समेट ले, जो अपना विकास बांग्ला, मराठी आदि की तरह संस्कृत के सहारे करे, जो उच्च शब्दावली के लिए एकमात्र फ़ारसी पर निर्भर न हो।'[11] परंतु वह अरबी–फ़ारसी के उन सरल शब्दों का भी बहिष्कार न करे जो आम बोलचाल की भाषा में प्रचलन में आ चुके थे।

भारतेंदु ने खड़ी बोली गद्य को नई उंचाइयां प्रदान कीं किंतु पद्य में खड़ी बोली का प्रयोग नहीं हो पा रहा था। उनकी 'भारत मित्र' तथा 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' में खड़ी बोली की कुछ कविताएं छपीं। किंतु यह कविताएं स्वयं उनको जंची नहीं। इस संदर्भ में वह लिखते हैं, ''जो हो, मैंने आप कई बेर परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविताएं बनाऊं पर वह मेरे चित्तानुसार नहीं।''[12] स्पष्ट है कि खड़ी बोली कविता में उनका चित्त नहीं रमा।

बेशक भारतेंदु से हिंदी खड़ी बोली की कविता ठीक–ठाक न बन सकी हो परंतु उन्होंने खड़ी बोली में जिस प्रकार ग़ज़लें लिखी हैं, उन्हें देख कर ऐसा प्रतीत नहीं होता कि उनका चित्त इस खड़ी बोली की कविता में नहीं रमा।

भारतेंदु के समय में उर्दू साहित्य अपनी प्रसिद्धि के चरम पर था। उर्दू के प्रसिद्ध साहित्यकारों ने इसे नई ऊंचाइयां प्रदान कीं। इन साहित्यकारों की रचनाएं आम जनमानस से जुड़ी हुई थीं। जहां इनकी नज़्मों में सामाजिक यथार्थ देखने को मिलता है, वहीं इनकी ग़ज़लों में रूमानियत का एहसास होता है। इनके साहित्य में आम लोगों के दुख–दर्द को अभिव्यक्ति मिली। नज़ीर अकबराबादी ने जहां अपनी नज़्मों में सामाजिक यथार्थ को उकेरा है, वहीं ग़ालिब ने ग़ज़लों के माध्यम से प्रेम व रूमानियत को बयान किया है। ग़ालिब तक आते–आते ग़ज़ल विधा इतनी प्रसिद्ध हो गई थी कि इसका हर कोई मुरीद बन गया। ग़ज़ल विधा में कम शब्दों में बड़ी गहरी बात कही गई होती है, जो पाठक और श्रोता पर गहरा असर डालती है। ग़ज़ल चूंकि गाई भी जाती है, इसलिए यह आम लोगों तक अपनी पहुंच आसानी से बना लेती है। उर्दू में ग़ज़ल विधा की ख्याति का पता इस बात से लगाया जा सकता है कि उर्दू में शायरी करने का मतलब ग़ज़ल लिखने या कहने से ही लिया जाता है। इस ग़ज़ल विधा का अपना अलग ही जादू या प्रभाव है। इस विधा का प्रभाव कई भाषाओं के साहित्य पर पड़ा। आज के दौर में हम देखते हैं कि ग़ज़ल न केवल उर्दू या हिंदी में लिखी या कही जाती है, बल्कि कई भाषाओं जैसे पंजाबी, मराठी, गुजराती यहां तक कि अंग्रेज़ी भाषा तक में ग़ज़ल कही जा रही है।

हिंदी साहित्य भी ग़ज़ल विधा के प्रभाव से अछूता नहीं रहा। भारतेंदु से पहले के समय में, भारतेंदु के समय में और उनके बाद के समय में, हिंदी ग़ज़ल के प्रभाव को देखा जा सकता है। हिंदी के लगभग सभी प्रसिद्ध कवियों ने इस विधा को साधने का प्रयास किया। हालांकि ग़ज़ल कहना उनका मुख्य कार्य नहीं था, परंतु फिर भी वह इस विधा के जादुई मोह से नहीं बच पाए। हिंदी के सभी प्रसिद्ध कवियों ने ग़ज़ल लिखने का प्रयास किया। दुष्यंत ने और उनके बाद के कवियों ने तो इस विधा को नई उंचाइयां प्रदान कीं।

भारतेंदु से पूर्व उनके पिता गिरधर दास ग़ज़ल लिखा करते थे। उन्होंने ग़ज़ल विधा का प्रयोग किया। उन्होंने दास गिरधर उपनाम से ग़ज़ल लिखी। वे हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं के विद्वान थे। इसलिए उन्हें दोनों भाषाओं के लोग अपना मानते थे। उर्दू भाषा के लोग उन्हें उर्दू का शायर कहते थे तथा हिंदी के लोग हिंदी का कवि। उनकी ग़ज़लों में हमें हिंदी और उर्दू का अनोखा संगम देखने को मिलता है। उदाहरण स्वरूप उनकी एक ग़ज़ल के कुछ शेर प्रस्तुत हैं:

हम भी उस बेपीर के आशिक़ हैं कहलाने लगे
आह हम मजनूं–शुमारी में गिने जाने लगे

हो गया मुझसे ख़फ़ा वह याद अब आता नहीं
जब से सब बेपीर आकर उसको बहकाने लगे

दास गिरिधर तुम फ़क़त हिंदी पढ़े थे खूब–सी
किस तरह उरदू के शायर में गिने जाने लगे[13]

इस तरह हम देख सकते हैं कि गिरधर दास ने ग़ज़लें उर्दू की ज़मीन पर खड़े होकर ही कही हैं। इनकी ग़ज़लें उर्दू शायरी से प्रभावित थीं, बल्कि वह स्वयं को उर्दू शायरों में शामिल भी करते हैं। इनकी ग़ज़लें आम बोलचाल की भाषा में कही गई हैं। इनकी ग़ज़लों में उर्दू और हिंदी की मिश्रित शब्दावली का प्रयोग किया गया है। इनकी ग़ज़लों में पारंपरिक उर्दू ग़ज़लों की तरह लौकिक प्रेम की जगह अलौकिक प्रेम व शृंगार की व्यंजना मिलती है।

गिरधर दास के बाद उनके पुत्र भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने सहयोगी कवियों के साथ ग़ज़ल की पूर्ववर्ती परंपरा को आगे बढ़ाया। भारतेंदु 'रसा' उपनाम से ग़ज़लें लिखा करते थे। कहीं उन्होंने 'हरिचन्द' उपनाम या तख़ल्लुस का भी प्रयोग किया है।

''इन्होंने हिंदी खड़ी बोली में उर्दू छंदों एवं बहरों के प्रयोग की नींव डाली। इनकी ग़ज़लें अधिकतर प्रेम संबंधी हैं, किंतु कहीं–कहीं दार्शनिक एवं व्यंग्य का पुट भी मिलता है। भारतेंदु अत्यंत प्रेमी जीव थे। अतः इनकी ग़ज़लों में प्रेम की मधुर चाशनी टपकी पड़ती है।''[14] हालांकि भारतेंदु की ग़ज़लें प्रेमपरक हैं, लेकिन उनमें ग़ज़लियत, लोच और नाद सौंदर्य उत्तम है। उनकी ग़ज़ल देखें:

दिल मेरा ले गया दगा करके
बेवफ़ा हो गया वफ़ा करके

हिज्र की शब घटा दी हमने
दास्तां जुल्फ़ की बढ़ा करके

वक़्ते रहलत जो आए बालीं पर
ख़ूब रोए गले लगा करके

दोस्तो, कौन मेरी तुरबत पर
रो रहा है रसा–रसा करके[15]

भारतेंदु की उपरोक्त ग़ज़ल बेशक हिंदी में लिखी गई है, लेकिन इस पर प्रभाव उर्दू ग़ज़ल का ही है। यह ग़ज़ल उर्दू ग़ज़ल परंपरा के वियोग श्रृंगार की ग़ज़ल है। इसी तरह इन्होंने होली को लेकर भी ऐसी प्रेमपरक ग़ज़ल लिखी है:

गले मुझको लगा ले ऐ मेरे दिलदार होली में
बुझे दिल की लगी मेरी भी तो ऐ यार होली में
नहीं यह है गुलाले–सुर्ख उड़ता हर जगह प्यारे
य' आशिक की हैं उमड़ी आहें आतिशबार होली में[16]

भारतेंदु ने जो भी ग़ज़लें लिखीं वह 'भारतेंदु ग्रंथावली' में संकलित हैं। उनकी ग़ज़लें देख कर ऐसा प्रतीत होता है कि वह अपने समकालीन उर्दू शायरों से प्रभावित होकर ग़ज़लें लिखने लगे थे। उनकी ग़ज़लों पर उर्दू ग़ज़ल का प्रभाव स्पष्ट दिखता है। वह मक़ते में 'रसा' उपनाम का प्रयोग उर्दू के उस्ताद शायरों की तरह करते हैं। उनकी ग़ज़ल हालांकि हिंदी में ही लिखी जाती थी, परंतु उन पर उर्दू का प्रभाव था। भारतेंदु की कुछ ग़ज़लें हिंदी ग़ज़ल के मिज़ाज से मिलती हैं, परंतु उनमें नए विषयों का अभाव देखने को मिलता है। भारतेंदु ने राधा–कृष्ण को लेकर भी श्रृंगार व भक्तिपरक ग़ज़लें लिखी हैं। भारतेंदु की ग़ज़लों में प्रेम, श्रृंगार, भक्ति, समसामयिक संदर्भ एवं व्यंग्य आदि का स्वर मिलता है। इनकी कुछ ग़ज़लें तो पूर्णतः उर्दू में ही लिखी गई हैं, परंतु अन्यः ग़ज़लों में हिंदुस्तानी बोलचाल की भाषा का प्रयोग हुआ है। उनकी ग़ज़लों से पता लगता है कि उन्हें ग़ज़ल की बारीकियों का पता था। उन्हें बहरों का ज्ञान था। उनकी ग़ज़लों में शब्दों का सटीक प्रयोग देखने को मिलता है। हालांकि उनकी ग़ज़लों में विषयगत नवीनता कम दिखती है परंतु उन्होंने हिंदी में ग़ज़ल लिख कर हिंदी के अन्य लेखकों को इस ओर प्रेरित किया और ग़ज़ल लेखन के लिए एक वातावरण तैयार किया।

भारतेंदु के बाद उस समय उनके सहयोगी पं. प्रतापनारायण मिश्र ने भी ग़ज़लें लिखीं। पं. प्रतापनारायण मिश्र एक बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार थे। उन्होंने ग़ज़ल लेखन को एक नई दिशा दी। उन्होंने विशुद्ध हिंदी भाषा में ग़ज़ल लिख कर यह दिखा दिया कि विशुद्ध हिंदी में भी ग़ज़ल लिखी जा सकती है। उनकी हिंदी में एक ग़ज़ल देख सकते हैं, जिसमें विशुद्ध हिंदी का प्रयोग हुआ हैः

क्यों दीनानाथ मुझ पे तेरी दया नहीं
आश्रित तेरा नहीं हूं, कि तेरी प्रजा नहीं

करुणा करोगे क्या मेरे आंसू ही देख कर
जी का भी मेरे दुख तो तुझसे छिपा नहीं

तुम शरण न दोगे तो मैं जाऊंगा कहां
अच्छा हूं या बुरा हूं, किसी और का नहीं[17]

इनकी ग़ज़ल विशुद्ध हिंदी में लिखी गई एक प्रयोगात्मक रचना है, जो इस संशय को समाप्त करती है कि हिंदी में ग़ज़ल किस प्रकार लिखी जा सकती है। ''जो लोग यह कहते हैं कि बिना उर्दू शब्दों का सहारा लिये हिंदी भाषा में ग़ज़ल लिखना कठिन है, उनके सम्मुख उन्होंने विशुद्ध हिंदी भाषा में ग़ज़ल–रचना का आदर्श प्रस्तुत किया।''[18]

भारतेंदु युग में बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भी ग़ज़लें लिखीं। डन्होंने अपनी कुछ ग़ज़लों में 'अब्र' नाम भी मक़ते के रूप में प्रयोग किया है। इनकी ग़ज़लों के विषय भी प्रेम और श्रृंगार ही रहे हैं, परंतु कहीं–कहीं यह प्रेम अलौकिक प्रतीत होता है। ''वास्तव में प्रेम एक शाश्वत विषय है और ग़ज़ल के लिए तो वह प्राण ही है।''[19] प्रेमघन की ग़ज़लों में भी इसी प्रेम की ही व्यंजना हुई हैः

मेरी जान से क्या नफ़ा पाइयेगा
छुड़ा के ये दामन कहां जाइयेगा

जो कहता हूं अब रहम हो जाय मुझ पर–
वो कहते हैं फिर आप आ जाइयेगा

इनायत करो हुस्न के जोश में–
वर्ना फिर हाथ मल–मल के पछताइयेगा

वो हँसते हैं सुनकर जो कहता हूं उनसे–
जलाकर मुझे आप क्या पाइयेगा

निकलवा के छोड़ेंगे बदरी नारायन
अगर आप मेरी तरफ़ आइयेगा[20]

प्रेमघन की ग़ज़लों की भाषा आम बोलचाल की हिंदुस्तानी भाषा है। उनकी ग़ज़लों में प्रायः उर्दू के वही शब्द प्रयोग में आए हैं जो उस समय की दैनिक बोलचाल की भाषा में रच–बस गए थे। उनकी ग़ज़लों में ब्रजभाषा के भी शब्दों का प्रयोग हुआ है। कुछ ग़ज़लें तो उन्होंने विशुद्ध खड़ी बोली में ही लिखी हैं।

इसी युग के अन्य कवियों में गोपाल लाल गुल ने भी ग़ज़लें लिखी हैं। उनकी ग़ज़लों का विषय की प्रेम ही रहा हैः

तजी सब लाज और गृहकाज उस ब्रजराज के कारण
अगर हो झूठ इसमें तो बबाजू की दुहाई है[21]

''गोपाल लाल गुल की ग़ज़ल का यह शेर विषय की दृष्टि से बेशक साधारण हो, लेकिन लाज, गृहकाज और ब्रजराज जैसे शब्दों को एक मिसरे में पिरो कर खूबसूरत संगीत पैदा किया है।''[22]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेंदु युगीन कवियों ने उर्दू ग़ज़ल से प्रभावित होकर ग़ज़लें लिखीं। उन पर उर्दू ग़ज़ल का गहरा प्रभाव दिखता है। उन्होंने हिंदी भाषा को भी उर्दू के दैनिक बोलचाल के शब्दों से परिपूर्ण किया। उन्होंने हिंदी ग़ज़ल को उर्दू की ज़मीन पर खड़े होकर ही लिखा। इनके विषय परंपरागत प्रेम एवं श्रृंगार परक ही रहे, परंतु इस सबके बावजूद उन्होंने हिंदी ग़ज़ल की नींव रख इसके विकास की संभावनाओं के द्वार खोले और परवर्ती कवियों के हिंदी ग़ज़ल लेखन के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

भारतेंदु युग के बाद द्विवेदी युग के कवियों ने अपने पूर्ववर्ती कवियों से प्रेरणा पाकर हिंदी ग़ज़ल लेखन को आगे बढ़ाया और इसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस काल के कवियों में जिन्होंने ग़ज़ल लेखन को आगे बढ़ाया, उनमें पं. श्रीधर पाठक, पं. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', नाथूराम शर्मा शंकर, लाला भगवानदीन, जगदंबा प्रसाद मिश्र 'हितैषी', रामप्रसाद बिस्मिल आदि प्रमुख हैं।

इस काल के सर्वप्रथम ग़ज़ल लेखक के रूप में हम श्रीधर पाठक का नाम ले सकते हैं, जिन्होंने अपने ''पूर्ववर्ती कवियों से प्रभावित होकर ग़ज़ल शैली में अनेक रचनाएं कीं। इनमें 'मजदूरनियों के लिए' तथा 'भारत–गीत' उल्लेखनीय हैं। इस संदर्भ में इनकी 'सुसंदेश' नामक रचना से कुछ पंक्तियां उद्धृत की जा सकती हैं, जिनमें रहस्यवाद का रंग देते हुए इन्होंने उस अदृश्य शक्ति की कल्पना एक

गायिका के रूप में प्रस्तुत करते हुए संकेत किया है कि समस्त सृष्टि में उसी के छेड़े स्वरों का संगीत व्याप्त है।

कहीं पै स्वर्गीय कोई बाला सुमंजु वीणा बजा रही है
सुरों के संगीत की सी कैसी सुरीली गुंजार आ रही है

कभी नई तान प्रेममय है, कभी प्रकोपन, कभी विनय है
दया है, दाक्षिण्य का उदय है, अनेकों वानक बना रही है

भरे गगन में हैं जितने तारे, हुए हैं मदमस्त गत पै सारे
समस्त ब्रह्मांड भर को मानव, दो उंगलियों पर नचा रही है

निस्संदेह उक्त रचना ग़ज़ल शैली से प्रभावित है, जिसमें विशुद्ध हिंदी भाषा का प्रयोग हुआ है।''[23]

पं. अयोध्या सिंह उपाध्याय ने भी खड़ी बोली की काव्य रचना में ग़ज़ल के लिए प्रचलित उर्दू बहरों का प्रयोग किया है। इसका कारण स्पष्ट करते हुए वह लिखते हैं कि ''जिस सुविधा से खड़ी बोली की क्रियाएं उर्दू में खपती हैं, हिंदी छंदों में नहीं।''[24]

क्यों पले पीस कर किसी को तू
है बहुत पालिसी बुरी तेरी

हम रहे चाहते पटाना भी
पेट तुझसे नहीं पटी मेरी[25]

इन्हीं की एक अन्य ग़ज़ल का शेर देखिए–

राह पर उसको लगाना चाहिए
जाति सोती है जगाना चाहिए[26]

इन रचनाओं में हिंदी–उर्दू मिश्रित दैनिक बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया गया है। नाथूराम शर्मा शंकर ने भी हिंदी ग़ज़ल के क्षेत्र में प्रयोग किए हैं। उनकी ग़ज़ल का एक शेरः

बाल उनके गोरे रुख पर, दिल चुराते हैं मेरा
चांदनी में चोर पड़ते हैं, अजब अंधेर है[27]

इसी दौरान लाला भगवान दीन भी हिंदी भाषा में ग़ज़लें लिख रहे थे। उन्हें उर्दू के छंदों से विशेष प्रेम था। उनकी ग़ज़ल के कुछ शेर प्रस्तुत हैंः

तुमने पैरों में लगाई मेंहदी
मेरी आंखों में समाई मेंहदी

है हरी ऊपर मगर अंतस है लाल
है ये जादू की जगाई मेंहदी

कुल से छूटी कूटकर पीसी गई
तब मेरे पद छूने पाई मेंहदी

पैर पड़–पड़ कर पकड़ लेती है कर
छल में बावन से सवाई मेंहदी

चूनरी से है सवाई मेंहदी
'दीन' को इस हेतु भायी मेंहदी[28]

प्रस्तुत ग़ज़ल में लाला भगवान दीन की विशिष्ट शैली के दर्शन होते हैं। इसमें उन्होंने कथ्य की अपेक्षा शिल्प पर अधिक ध्यान दिया है।

इनके अलावा उस समय श्रीकृष्णदेव प्रसाद गौड़ 'बेढब बनारसी', मैथिलीशरण गुप्त, गया प्रसाद शुक्ल सनेही आदि ने भी ग़ज़लें लिखीं। जहां इनकी ग़ज़लों में प्रेम, भक्ति और श्रृंगार आदि के विषय मिलते हैं, वहीं दूसरी तरफ़ इस युग में राष्ट्रीय भावना से भी ओत–प्रोत ग़ज़लें लिखी गईं। राष्ट्रीय भावना से प्रेरित

ग़ज़लें लिखने वालों में पं. जगदंबा प्रसाद मिश्र 'हितैषी' और प्रसिद्ध क्रांतिकारी रामप्रसाद बिस्मिल प्रमुख हैं।

अपने समय की मांग के अनुरूप इनकी ग़ज़लों में स्वराज्य, देश प्रेम, एवं क्रांति के स्वर मुखरित हुए हैं। इस संदर्भ में हितैषी की एक ग़ज़ल के कुछ शेर प्रस्तुत हैं:

वतन की आबरू का पास देखें कौन करता है
सुना है आज मक़तब में हमारा इंतिहा होगा

इलाही वह भी दिन होगा, जब अपना राज देखेंगे
जब अपनी ही ज़मीं होगी, जब अपना आसमां होगा

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशां होगा[29]

इन ग़ज़लों में राष्ट्रीय भावना भरी हुई है। रामप्रसाद बिस्मिल की ग़ज़लें तो स्वतंत्रता सेनानियों के लिए प्रेरणादायक सिद्ध हुईं। उनकी ग़ज़लों ने अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध विद्रोह की भावना देश के बच्चे–बच्चे में भर दी। अंग्रेज़ी शासन के ख़िलाफ़ इन ग़ज़लों ने मोर्चाबंदी की। उनकी ग़ज़लों से लोगों के ख़ून में उबाल पैदा होता था और वे अपनी जान तक कुरबान करने के लिए तैयार हो जाते थे। उनकी एक ऐसी ही ग़ज़ल के कुछ शेर देखिए:

बला से हमको लटकाए अगर सरकार फांसी से
लटकते आए अक्सर पैकरे–ईसार फांसी से

लबे दम भी न खोली ज़ालिमों ने हथकड़ी मेरी
तमन्ना थी कि करता मैं लिपटकर प्यार फांसी से

खुली है मुझको लेने के लिए आगोशे–आज़ादी
ख़ुशी कि हो गया महबूब का दीदार फांसी से।

कभी ओ बेख़बर! तहरीके–आज़ादी भी रुकती है

बढ़ा करती है उसकी तेज़ी–ए–रफ़्तार फांसी से

यहां तक सरफ़रोशांने–वतन, बढ़ जाएंगे क़ातिल
कि लटकाने पड़ेंगे नित तुझे दो–चार फांसी से[30]

बिस्मिल की ग़ज़लों की एक ख़ासियत उनकी भाषा में मिली–जुली हिंदी–उर्दू का प्रयोग भी था, जो उनकी ग़ज़लों को बोलचाल की भाषा के बेहद करीब ला देता था। अशफ़ाकउल्ला ने भी ऐसी ही ग़ज़लें लिखी हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि द्विवेदीयुगीन कवियों ने भी अपने पूर्ववर्ती कवियों से प्रेरणा लेकर हिंदी ग़ज़ल का विकास किया। उन्होंने हिंदी–उर्दू मिश्रित दैनिक बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया और उनके विषय भी अपने पूर्ववर्ती कवियों के अनुरूप ही थे, परंतु उनमें भक्ति और राष्ट्रीय भावना जैसे कुछ नए विषय और जुड़ गए। इस युग के कवियों ने भी उन्हीं प्रतीकों और बिंबों का प्रयोग किया जो उर्दू ग़ज़ल में होते आए हैं। जैसे– बहार, पतझड़, गुल, चमन, पत्थर, बिजली, संग, मोम, आबे हयात, मीनार, गुंबद आदि अनेक प्रतीकों को ज्यों का त्यों हिंदी ग़ज़ल में ले लिया गया। उन्होंने ग़ज़ल के शिल्प को बनाए रखा और अपनी ग़ज़लों में उसका सही प्रयोग भी किया और ग़ज़ल लेखन की इस परंपरा को आगे बढ़ाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

छायावादी युग में इस ग़ज़ल विधा को आगे बढ़ाने का काम जिन कवियों ने किया, उनमें जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और पं. माखनलाल चतुर्वेदी प्रमुख हैं।

जयशंकर प्रसाद ने ग़ज़ल को हिंदी के सांचे में ढालने का महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने अपनी ग़ज़लों में उर्दू के शब्दों के स्थान पर हिंदी के शब्दों का प्रयोग किया। हालांकि विषयगत तौर पर उनमें नवीनता का अभाव दिखता है और उनके विषय भी उर्दू ग़ज़ल की परंपरागत शायरी की तरह ही हैं, परंतु भाषागत रूप से देखा जाए तो उनमें एक प्रकार की नवीनता दिखाई पड़ती है। उदाहरण के तौर पर देखें:

विमल इंदु की विशाल किरणें प्रकाश तेरा बता रही हैं
अनादि तेरी अनंत माया जगत को लीला दिखा रही हैं[31]

इसमें हिंदी के शब्दों की भरमार है और उर्दू के एक भी शब्द का प्रयोग दिखाई नहीं पड़ता। इनकी इस प्रकार की एक प्रेमपरक ग़ज़ल प्रस्तुत है, जिसमें सामाजिक व्यवहार की चर्चा प्रसाद ने की हैः

सरासर भूल करते हैं, उन्हें जो प्यार करते हैं
बुराई कर रहे हैं और अस्वीकार करते हैं

उन्हें अवकाश ही इतना कहां है मुझसे मिलने का
किसी से पूछ लेते हैं यही उपकार करते हैं

जो ऊंचे चढ़ के चलते हैं वो नीचे देखते हरदम
प्रफुल्लित वृक्ष की यह भूमि कुसुमागार करते हैं

न इतना फूलिए तरुवर सुफल कोरी कली लेकर
बिना मकरंद के मधुकर नहीं गुंजार करते हैं

'प्रसाद' उनको न भूलो तुम तुम्हारा जो कि प्रेमी हो
न सज्जन छोड़ते उसको जिसे स्वीकार करते हैं[32]

प्रसाद की उर्दू के छंद में लिखी ग़ज़लें बहर की दृष्टि से सफलतम ग़ज़लें हैं, जिन्होंने उर्दू ग़ज़ल के लेखन के सभी नियमों का पालन बखूबी किया है। प्रसाद की ग़ज़लों पर छायावाद का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता है। उनकी ग़ज़लों में प्रकृति, प्रेम तथा कल्पना के नए चित्र देखने को मिलते हैंः

अरुण अभ्युदय से हो मुदित मन प्रशांत सरसी में खिल रहा है
प्रथम पत्र का प्रसार करके सरोज अलिगण से मिल रहा है

तुम्हारा विकसित बदन बताता हंसे मित्र को निरख के कैसे
हृदय निष्कपट का भाव सुंदर बदन पे तेरे उछल रहा है

तुम्हारे केसर से सुगंधित परागमय ही रहे मधुव्रत
प्रसाद विश्वेश का हो तुम पर यही हृदय से निकल रहा है[33]

प्रसाद की ग़ज़लों में प्रकृति के अलावा राष्ट्रीय चेतना के स्वर भी देखने को मिलते हैं। उनकी हिंदी शैली की बड़ी बहरों की ग़ज़लों की अपेक्षा उनकी छोटी बहरों की ग़ज़लें ज्यादा अच्छी बन पड़ी हैं तथा उनकी भाषा भी बोलचाल की भाषा के ज्यादा निकट है, जैसेः

हमारे निर्बलों के बल कहां हो
हमारे दीन के संबल कहां हो[34]

या

देश की दुर्दशा निहारोगे
डूबते को कभी उबारोगे[35]

प्रसाद की ग़ज़लों में हम पाते हैं कि विषय की दृष्टि से बेशक उनमें नवीनता का अभाव है, परंतु उनमें भाषा की दृष्टि से प्रयोगात्मकता देखने को मिलती है। जिसकी वजह से उनकी बड़ी बहरों की ग़ज़लों की अपेक्षा छोटी बहरों की ग़ज़लें ज्यादा प्रभावशाली हैं। इसके बावजूद वह ग़ज़ल शैली का पूरा निर्वाह करते हैं। उनमें ग़ज़ल की तान और लय मौजूद है।

''प्रसाद जी की ग़ज़लों में भावना एवं अनुभूति की मृदुता और मानव जीवन के उत्कर्ष का गौरव है। उनकी अनुभूतियों में मनोनिवेश है, आत्मसंवेदन है, प्रसाद गुण है और कल्पना, भावना एवं अनुभूति का समन्वय है। इनकी ग़ज़लों में दार्शनिक और आध्यात्मिक स्वरों का समावेश भी है। मानव जीवन के साथ पग–पग पर मानव की सहचरी प्रकृति का सामंजस्य है। इन ग़ज़लों में जीवन का तत्वज्ञान सन्निहित है। प्रसाद जी की ग़ज़लों की भाषा पुष्ट और परिमार्जित है। शब्दावली मृदुलता, ध्वन्यात्मक एवं संगीतात्मकता से संपन्न है। कवि प्रसाद ने अपनी ग़ज़लों में उर्दू–फ़ारसी कवियों की भांति उपनाम का प्रयोग भी किया है। शिल्प–सौष्ठव की दृ ष्टि से भी प्रसाद की हिंदी ग़ज़लें परवर्तियों के लिए अनुकरणीय सिद्ध हुई हैं। कुल

मिलाकर विशुद्ध हिंदी में लिखी गई कवि प्रसाद की ग़ज़लों पर उनके चिंतन–मनन और अनुभूति का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है।''[36]

इस युग के दूसरे बड़े कवि निराला ने भी ग़ज़ल के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने हिंदी ग़ज़लों को विषयगत नवीनता प्रदान की और उसे सामाजिक संदर्भों से जोड़ा। उन्होंने आध्यात्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, प्रकृति आदि सभी विषयों पर ग़ज़लें लिखीं। सामाजिक जीवन की यथार्थता का अपनी ग़ज़लों में उन्होंने बखूबी चित्रण किया है। निराला ने देश की तत्कालीन स्थिति को भी अपनी ग़ज़लों में प्रस्तुत किया है। गरीबी, भुखमरी, अपमान, पराधीनता आदि समस्याओं पर उन्होंने ग़ज़लें लिखीं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि उन्होंने हिंदी ग़ज़ल में जबरदस्ती हिंदी के शब्द ठूंस कर उसे बोझिल होने से बचाया और हिंदुस्तानी बोलचाल की ज़बान का प्रयोग किया। वह जानते थे कि ग़ज़ल में सादा ज़बान और सहजता ज़रूरी हैः

अगर तू डर के पीछे हट गया तो काम रहने दे
अगर बढ़ता है अरि की ओर तो आराम रहने दे

बिगड़कर बनते और बनकर बिगड़ते एक युग बीता
परी और शाम रहने दे शराब और जाम रहने दे[37]

निराला की ग़ज़लों में पूंजीवाद विरोधी स्वर भी देखने को मिलते हैं। वह शोषक व पूंजीपति वर्ग का विरोध करते हैं। इस विषमता आधारित समाज को समाप्त कर समानता आधारित समाज की स्थापना की वकालत करते हैंः

भेद कुल खुल जाय वह सूरत हमारे दिल में है
देश को मिल जाए जो पूंजी तुम्हारी मिल में है

हार होंगे हृदय के खुलकर सभी गाने नए
हाथ में आ जाएगा, वह राज़ जो महफ़िल में है[38]

निराला चूंकि छायावादी कवि थे, उनकी ग़ज़लों में प्रकृति सौंदर्य की अनुपम छटा दिखाई पड़ती हैः

छाये आकाश में काले–काले बादल देखे
झोंके खाते हवा में सरसों के कमल देखे

कानों में बातें बेला और जूही करती थीं
नाचते मोर, झूमते हुए पीपल देखे

दिल की बुझने के लिए नर्म–नर्म मिट्टी पर
टूटते बाज जैसे लावों के दंगल देखे

किसान खेतों में लड़के अखाड़ों में आये
बारहमासी गाती हुई लड़कियों के दल देखे[39]

निराला की ग़ज़लों में आध्यात्मिक स्वर भी दिखाई देता हैः

साधना आसान हुई संसार के व्यापार में
सत्य की अनवद्यता से आ गए विस्तार में

कामना की किरण की तेज़ी मलिन पड़ती गई
सृष्टि का धन खुल गया, भूला अखिल के प्यार में[40]

उनकी ग़ज़लों के विषय में डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं कि ''अनेक ग़ज़लों में उन्होंने रहस्यवाद का रूपक बांधा है। लेकिन नई ग़ज़लों में देश और समाज के बारे में भी बातें की गई हैं।''[41]

किनारा वो हमसे किए जा रहे हैं
दिखाने को दर्शन दिए जा रहे हैं

जुड़े थे सुहागिन के मोती के दाने
वही सूत तोड़े लिए जा रहे हैं[42]

अतः हम देख सकते हैं कि निराला की ग़ज़लों में विषयगत नवीनता है। उनमें प्रकृति चित्रण एवं तत्कालीन परिवेश की भावभूमि है और भाषा की दृष्टि से भी उन्होंने सहज बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। उन्होंने उर्दू भाषा के शब्दों का प्रयोग तो किया ही है, हिंदी और संस्कृत के शब्दों का भी प्रयोग किया है। इस तरह उनकी भाषा मिली–जुली भाषा है।

डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार ''उनकी ग़ज़लों में वही पुरानी कल्पनाएं हैं। कहीं–कहीं भौतिक सौंदर्य का वर्णन है। गीतिका में अनेक छंदों जैसी मांसलता है। देश की सुरबहार पर स्नेह की रागिनी बजाना ऐसी ही कल्पना है। उन्होंने उर्दू की बोलचाल का रंग अपनाया है। इन ग़ज़लों को पढ़ते हुए लगता है जैसे कवि की नई चेतना प्रकाश में आने के लिए रूढ़ियों से टकरा रही है।''[43]

इस काल के अन्य मुख्य हिंदी ग़ज़लकारों के रूप में पं. माखनलाल चतुर्वेदी का नाम लिया जा सकता है। इनके प्रेम काव्य पर उर्दू ग़ज़लों का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। इनकी ग़ज़ल की दो पंक्तियां उदाहरण स्वरूप देखी जा सकती हैं, जिनमें वह अपने प्रिय के कठोर हृदय में दया उत्पन्न करने का प्रयत्न करते हैं:

जब रूप निगोड़ा हिरदे को सूली पर टंगवाता होता
तब गुन का गलफंदा कसकर साजन के तम–रथ जाती मैं[44]

इनकी एक अन्य ग़ज़ल का शेर भी इसी प्रकार प्रेम की उलाहना से भरा है:

वीराना हो वृंदावन हो तुमको वनवास नहीं लगता
चढ़ जाएं चरण पर सहस बार तुमको तो पास नहीं लगता[45]

इनकी ग़ज़लों पर उर्दू ग़ज़लों का प्रभाव है। इनकी भाषा में उर्दू शैली के साथ–साथ हिंदी की तद्भव शब्दावली का भी प्रयोग हुआ है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इस काल के कवियों ने हिंदी ग़ज़ल लेखन की संभावना को विस्तार प्रदान किया और इन्होंने इसे विषयगत नवीनता प्रदान कर आने वाले कवियों के लिए एक नवीन वातावरण तैयार किया, जिसमें कि ग़ज़ल

लेखन संभव हो सके और अपनी उंचाई प्राप्त कर सके। इन्होंने आने वाले कवियों के लिए हिंदी ग़ज़ल के नवीन कथ्य और शिल्प की संभावनाओं के द्वार खोले।

पूर्ववर्ती ग़ज़लकारों ने जो ज़मीन तैयार की उस पर खड़े होकर बाद के छायावादोत्तर कालीन ग़ज़लकारों ने हिंदी ग़ज़ल विधा को आगे बढ़ाया और इस परंपरा को आगे की परंपरा से जोड़ा। इस काल में जिन कवियों ने हिंदी ग़ज़ल लेखन को अपनाया उनमें मुख्यतः रामेश्वर शुक्ल अंचल, नरेंद्र शर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी, जानकीवल्लभ शास्त्री, बलबीर सिंह 'रंग', रामस्वरूप सिंदूर, विश्वंभरनाथ उपाध्याय, हंसराज रहबर, राम अवतार त्यागी आदि प्रमुख हैं।

रामेश्वर शुक्ल अंचल की ग़ज़लों ने उर्दू ग़ज़लों से काफ़ी प्रभाव हासिल किया है। उर्दू की ही तरह उनकी ग़ज़लों में सौंदर्य, प्रेम और यौवन की बात होती है और स्त्री–पुरुष के प्रेम विषयक विभिन्न भंगिमाएं मिलती हैं। विरह में संसार कितना शोकाकुल और उदास लगता है, इसे कवि ने अपनी एक ग़ज़ल के जरिए दिखाया हैः

काश मिल जाए भटकती जिंदगी को तेरी आस
काश छन आए मेरे हर बिंब में तेरा प्रकाश

अपनी आंखों में लगा लेते हैं हर सपने की राख
दीप–सा जला रात भर जिसको रही तेरी तलाश[46]

अंचल की ग़ज़लों में प्रेम, श्रृंगार और विरह वर्णन के साथ–साथ बदलते हुए युग बोध और परिवेश का भी वर्णन हुआ है। उनकी ग़ज़लों में राष्ट्रीय जागरण, मानव प्रेम, जनता के दुख–दर्द, क्रांति और मानवता के राग–विराग के भी दर्शन होते हैं।

जब कवि देखता है कि जनता अपार शोषण सहते हुए दुर्दशा झेल रही है और पूंजीवादी सभ्यता में पले सत्ताधारी और बेईमान नौकरशाही सारी सुविधाएं भोग रही है तो कवि ऐसी समाज व्यवस्था पर चोट करता हैः

आज उन्हीं के जलवे सायों को जीवित करते हैं
स्याह अंधेरों की साजिश में दिन का जादू करते हैं

नाम इसी का है ख़ुशहाली तो फिर भूख ग़रीबी क्या
होकर भी आज़ाद हिरासत की हम ख़्वाहिश करते हैं[47]

इस तरह हम पाते हैं कि अंचल की ग़ज़लों में प्रेम भी है और सामाजिक यथार्थ भी। उनमें उर्दू ग़ज़लों का रस भी है तो हिंदी ग़ज़लों को स्थापित करने का आग्रह भी। शिल्प की दृष्टि से भी इनकी ग़ज़लों में हमें नयापन दिखाई देता है।

इसी तरह इस युग के अन्य कवि नरेंद्र शर्मा भी उर्दू ग़ज़ल से प्रभावित होकर प्रेम और विरहजन्य ग़ज़लें लिख रहे थे। इनकी ग़ज़लों में प्रेम की सुकुमारता के साथ–साथ प्रकृति के मोहक सजीव चित्र भी अभिव्यक्त हुए हैं। इनकी ग़ज़लों में कहीं–कहीं जीवन का अवसाद भी देखने को मिलता है।

यह मेरा एकाकी जीवन कहां–कहां भटकेगा जाने
पानी में बहते प्रसून सा कहां–कहां अटकेगा जाने

लहरों के इंगित में गति है, परवश हूं मैं यही नियति है
धारा से तट, तट से झोंका, कब तक यों भटकेगा जाने[48]

इसी युग में हरिकृष्ण प्रेमी ने हिंदी ग़ज़ल काव्यधारा को नई जवानी एवं रवानी प्रदान की। इनकी ग़ज़लों का विषय भी उर्दू की परंपरागत ग़ज़लों से मिलता जुलता है। परंतु इनकी ग़ज़लों में यत्र–तत्र आधुनिक युगबोध भी प्रदर्शित होता है। इनकी ग़ज़लों में प्रेम का वर्णन यथार्थ की धरती पर खड़े होकर किया जाता है। इनकी ग़ज़लों में भावों के मनोवेग के साथ–साथ केवल कोरी कल्पना की उड़ान नहीं है, अपितु यथार्थ का बोध हैः

मुझे सौंदर्य प्यारा है, भले ही वह जला डाले
अमर है भावना मेरी, मरण से मैं न डरता हूं

युगों की जिंदगी लेकर न जीवन भार ढोता हूं

शमा से मिल गए क्षण में निछावर प्राण करता हूं

गगन के चंद्र की किरणें मुझे देती निमंत्रण हैं
मगर मैं भूमि की छवि से गले मिलने विचरता हूं[49]

इसी समय में आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री ने भी हिंदी ग़ज़लें लिखीं। इनकी ग़ज़लों में भी प्रेम, विरह, प्रकृति चित्रण आदि मिलते हैं। इनकी ग़ज़लें प्रायः रदीफ के बंधनों से मुक्त हैं, किंतु काफिए का पालन किया गया है। इनकी ग़ज़ल का एक उदाहरण देखें:

तुम न हो पास इसी से उदास मेरा मन
सांस चलती है, चिहुंक चेत्ता नहीं है तन

नींद ऐसी न किसी और को आई होगी
जाग कर ढूंढ़ती धरती कहां है मेरा गगन

मौसमी गुल हो निछावर बहार तुम पर ही
काबिल दीद ख़िजां में खिला है मेरा चमन

भूल कर कूल गर्क कश्तियां हुईं कितनी
लौट मंझधार में आया चिरायु ख़ुद मरण

बुलबुलों ने दिया दुहरा कलाम गुंचों का
गंध भर मौन रहा आह! एक मेरा सुमन[50]

उनके अतिरिक्त कवि बलबीर सिंह 'रंग' ने भी हिंदी ग़ज़ल को नए रंग व तेवर प्रदान किए। इनकी ग़ज़लें भी परंपरागत उर्दू ग़ज़लों जैसा ही रंग लिए हुए हैं। उनकी ग़ज़लें सुकोमल शब्दावली से रची हुई प्रेम कविताएं ज्यादा प्रतीत होती हैं। इन्होंने हिंदी ग़ज़लों में विविध प्रयोग किए हैं। परंतु इनकी प्रेम और श्रृंगार एवं प्रकृति चित्रण की ग़ज़लें ज्यादा सफल बन पड़ी हैं:

प्यारी चांदनी है तुम कहां हो
तुम्हारी यामिनी है तुम कहां हो

समस्याएं उलझती जा रही हैं
नियति उन्मादिनी है तुम कहां हो

अमृत के आचमन का अर्थ ही क्या
तृषा बैरागिनी है तुम कहां हो

तिरोहित हो रहा है गतिरोध का तम
प्रगति अनुगामिनी है तुम कहां हो[51]

इन्होंने विशुद्ध हिंदी भाषा में भी ग़ज़लें लिखी हैं। यह इनकी प्रयोगात्मक ग़ज़लें ही बन पड़ी हैं, जिनमें इन्होंने ग़ज़ल को ठेठ हिंदी में ढालने का प्रयोग किया है।

निर्झरों, नदियों, तड़ागों की प्रगति को साधुवाद
सिंधु में उठते हुए तूफ़ान की चर्चा करें

यज्ञ के उपरोहितों के पास सामग्री अपार
पूर्ण आहुति दे उसी यजमान की चर्चा करें[52]

इसी दौर के एक अन्य कवि राम अवतार त्यागी ने भी ग़ज़लें लिखीं। इनकी ग़ज़लों में आधुनिकता बोध और भाषाई लोच दोनों दिखाई पड़ते हैं। इनकी ग़ज़लों में हमें विरोधाभास देखने को मिलता है, जो सामाजिक विसंगति को उजागर करने के एक माध्यम के रूप में सामने आता है। जैसेः

तन बचाने चले थे कि मन खो गया
एक मिट्टी के पीछे रतन खो गया

घर वही, तुम वही, मैं वही, सब वही
और सब कुछ है, वातावरण खो गया

यह शहर पा लिया, वह शहर पा लिया
गांव को जो दिया था, वचन खो गया

दोस्ती का सभी ब्याज जब खा चुके
तब पता ये चला मूलधन खो गया

यह ज़मीं तो कभी भी हमारी न थी
यह हमारा तुम्हारा गगन खो गया

हमने पढ़ कर जिसे प्यार सीखा कभी
एक ग़लती से वो व्याकरण खो गया[53]

''राम अवतार त्यागी बेशक बहुत बड़े ग़ज़लकार न हों, लेकिन ग़ज़ल के लिए वह एक नई भावभूमि ज़रूर बनाते नज़र आते हैं।''[54]

संक्षेप में छायावादोत्तर कवियों ने हिंदी ग़ज़ल की परंपरा को आगे बढ़ाने एवं समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके बाद प्रयोगवादी युग में शमशेर बहादुर सिंह ने हिंदी ग़ज़लों पर विशेष प्रभाव डाला है। इनकी ग़ज़लों में उर्दू ग़ज़ल जैसे कथ्य, प्रवाह एवं शिल्प के दर्शन होते हैं। इनकी ग़ज़लों में हमें विचारों की नवीनता, आधुनिक परिवेश का यथार्थ–बोध दिखाई देता है:

वही उम्र का एक पल कोई लाए
तड़पती हुई–सी ग़ज़ल कोई लाए

हक़ीकत को लाए तख़ैयुल से बाहर
मेरी मुश्किलों का हो हल कोई लाए

नज़र तेरी दस्तूरे–फिरदौस लाई
मेरी ज़िंदगी में अमल कोई लाए[55]

शमशेर की ग़ज़लों में प्रेम और सौंदर्य के साथ–साथ पीड़ा के भी दर्शन होते हैं। यह पीड़ा कभी विरह की भी हो सकती है तो कभी आम आदमी के यथार्थ जीवन की कठिनाइयों एवं समस्याओं से उपजी हुई हो सकती है। इनकी ग़ज़लों में आम आदमी की पीड़ा को बड़ी सरलता से उकेरा है:

इश्क़ की शायरी है ख़ाक, हुस्न का ज़िक्र है मज़ाक

दर्द में गर चमक नहीं, रूह में गर ज़िला नहीं[56]

इनकी ग़ज़लें उर्दू के अत्यधिक निकट हैं, फिर भी देवनागरी लिपि में लिखे जाने और क्योंकि स्वयं शमशेर इन्हें हिंदी कविता से अलग नहीं मानते थे, इसलिए इन्हें हिंदी ग़ज़ल की कोटि में ही रखा जाना चाहिए।

''गिरजाकुमार माथुर ने 'शाम की धूप' में उर्दू की एक छोटी बहर को तोड़ कर उसके काल, मान और लय के आधार पर नया मुक्त छंद रचा है। इसी प्रकार 'नये साल की सांझ' का छंद भी ग़ज़ल के कालमान पर लिखा गया है। अज्ञेय की रचनाओं में भी यत्र–तत्र ग़ज़ल के तत्व आंशिक रूप से विद्यमान हैं।''[57] इन पंक्तियों को देखें :

जब–जब पीड़ा मन में उमगी, तुमने मेरा स्वर छीन लिया
मेरी निश्शब्द विवशता में, झरता आंसू–कन बीन लिया
प्रतिभा दी थी जीवन प्रसून से, सौरभ संचय करने की
क्यों सार निवेदन का मेरे, कहने से पहले चीन्ह लिया

या

हवा हिमंती सन्नाती है, भीड़ में
सहमे पंछी चिहुंक उठते हैं नीड़ में[58]

इसी समय में त्रिलोचन शास्त्री ने भी हिंदी ग़ज़लें लिखीं। इनकी ग़ज़लों में सादगी और खरापन है। इनकी ग़ज़लों में समकालीन यथार्थ परिवेश से परिपूर्ण महानगरीय वातावरण से उत्पन्न कुंठा एवं संत्रास को त्रिलोचन ने अपनी ग़ज़लों में उकेरा है। इनकी ग़ज़लों में शिल्पगत उत्कृष्टता के स्थान पर अनुभूति की तीव्रता दिखाई पड़ती है। इनकी ग़ज़लों में विशुद्ध हिंदी भाषा का प्रयोग हुआ है।

प्रबल जलवात पा कर सिंधु दुस्तर होता जाता है
कठिन संघर्ष जीवन का कठिनतर होता जाता है

कमाता एक था परिवार पूरा चैन करता था
अकेले का भी जीवन अब तो दूभर होता जाता है

बड़ों को छोटा छोटों को बहुत छोटा बना डाला
पटेले के तले ढेला बराबर होता जाता है

हमें आशा थी अब तो दुख अपना पीछा छोड़ेंगे
मगर हम क्या करें पीछा निरंतर होता जाता है[59]

अन्य प्रयोगवादी कवियों में भी हिंदी ग़ज़ल के तत्व आंशिक रूप से देखने को मिलते हैं। इस प्रकार इस युग के कवियों ने विशेषकर शमशेर और त्रिलोचन ने हिंदी ग़ज़ल को एक नए रूप में ढाल कर आगे आनेवाले ग़ज़लकारों के लिए ज़मीन तैयार की और उन्होंने हिंदी ग़ज़ल की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए परवर्तियों का पथ प्रशस्त किया।

प्रयोगवादी युग के बाद एवं 1960 के बाद हिंदी ग़ज़ल विधा को एक ऐसे ग़ज़लकार ने संवारा जिनके नाम से इस विधा को जाना जाने लगा। उसने इस विधा को नए मायने प्रदान किए। इसे नई ऊंचाइयों पर पहुंचाया। उसके बाद आने वाले कवि ग़ज़लकार उस जैसा ग़ज़ल लेखन करने के लिए इस विधा की ओर अग्रसर हुए और एक पूरी की पूरी पीढ़ी उसके बाद इस विधा में लिखने लगी। यह जादू था दुष्यंत कुमार का। दुष्यंत कुमार ने हिंदी ग़ज़ल को न केवल स्थापित किया, बल्कि उसे प्रगति के मार्ग पर अग्रसर किया। उन्होंने ग़ज़ल को नए कथ्य, नए शिल्प, नए विषय, नई सोच, नई लोच एवं नई भाषा प्रदान की। उन्होंने ग़ज़ल को सामाजिक सरोकारों से जोड़ा और उसे आम आदमी के दुख–दर्द में शामिल किया। दरअसल यह युग समस्याओं और संघर्षों का युग था। समाजवाद एक स्वप्न बन कर रह गया था और पूंजीवादी महानगरीय सभ्यता पूरे वातावरण को दूषित कर रही थी। ऐसी विषम सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों से ग्रस्त युग में दुष्यंत ने समय की आवाज़ को पहचाना और अपनी ग़ज़लों को आम आदमी तक पहुंचा कर उनके दर्द को मुखरित किया।

कहां तो तय था चिरागां हरेक घर के लिए
कहां चिराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिए

यहां दरख़्तों के साए में धूप लगती है
चलो यहां से चलें और उम्र भर के लिए[60]

दुष्यंत के बाद तो उनसे प्रभावित होकर कवियों की एक पूरी पीढ़ी ग़ज़ल विधा लेखन की ओर अग्रसर हुई, जिन्होंने हिंदी ग़ज़ल के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। दुष्यंत से प्रभावित कवियों में निरंकारदेव सेवक का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। कथ्य और शिल्प की दृष्टि से इनकी ग़ज़लें दुष्यंत के करीब हैं। उन्होंने अपनी ग़ज़लों में आम आदमी की पीड़ा को उकेरा है और सर्वहारा वर्ग को वाणी दी हैः

जीवन तो मिल गया था मगर जी नहीं मिला
जी चाहता तो था यह जहर पी नहीं मिला

पैजामा सी लिया तो था, कुर्ता फटा–फटा
दोनों को एक साथ कभी सी नहीं मिला

जो दूसरे के दर्द को अपनी तरह जिए
ऐसा तो कोई हमको बशर ही नहीं मिला

हम भी किसी से कम तो न थे देशभक्ति में
क्या हो गया जो हमको पद्मश्री नहीं मिला[61]

सामाजिक एवं नैतिक जीवन–मूल्यों के पतन की ओर भी कवि की दृष्टि गई हैः

सड़कों पर बदहवास चले जा रहे हैं लोग
मंज़िल का कुछ पता न कहीं पा रहे हैं लोग

पुरखों ने जो बनाई थी ऊंची हवेलियां
उनकी अब ईंट–ईंट बजा ढा रहे हैं लोग

आंसू न गिराओ न सही सिर तो झुका लो
इंसानियत की लाश लिए आ रहे हैं लोग[62]

इनके साथ ही नीरज ने भी गीतिकाओं के नाम से जो ग़ज़लें लिखी हैं, उनमें आध्यात्मिकता के साथ–साथ सामाजिक विसंगतियों पर कटाक्ष भी मिलता है। इनकी ग़ज़लों में यथार्थवादी स्वर भी मुखरित हुआ है। इनकी ग़ज़लों की भाषा आम बोलचाल की हिंदुस्तानी है।

समय ने जब भी अंधेरों से दोस्ती की है
जलाके अपना ही घर हमने रोशनी की है

सुबूत है मेरे घर में ये धुएं के धब्बे
कभी वहां पे उजालों ने ख़ुदकुशी की है[63]

दुष्यंत के बाद के कवि ग़ज़लकारों में सूर्यभानु गुप्त का नाम भी आदर से लिया जाता है। इन्होंने सरल उर्दू भाषा की शब्दावली का प्रयोग करके ग़ज़ल में एक मिठास पैदा की है। इनकी ग़ज़लों में अनुभूति की तीव्रता के साथ–साथ अभिव्यक्ति की सहजता का भी प्रवाह है। इनकी ग़ज़लों में आम आदमी का भोगा यथार्थ, उसकी पीड़ा, छटपटाहट, टीस का मार्मिक वर्णन हुआ है।

खूब दे दे के भरना पड़ता है
दर्द ख़ाली गिलास होते हैं

आओ ग़म को लिबास पहना दें
लफ्ज ग़म का लिबास होते हैं

हमने यूं ही मिज़ाज पूछे थे
आप नाहक उदास होते हैं[64]

चंद्रसेन विराट भी इसी दौर के हिंदी ग़ज़लकार हैं। इनकी ग़ज़लों में आज के परिवेश में बदलते हुए मानव और उनकी पल–पल परिवर्तित होने वाली मानसिकता का चित्रण हुआ है। इनकी ग़ज़लों में भी यथार्थ परिवेश से अपनी कुंठा और संत्रास का चित्रण हुआ है।

स्वर स्वरों में मिलाने लगे

लोग गुणगान गाने लगे

रात ही रात निष्ठा बदल
लोग झंडे रंगाने लगे

हाथ जो मुट्ठियां तानते
आज माला पिन्हाने लगे

जिनकी कुर्सी हटाने को थे
उनकी दरियां बिछाने लगे

पीठ पर मार पड़ने लगी
पेट अपना बचाने लगे

भाव ऊंचा चढ़ा देखकर
लोग रिश्ते भुनाने लगे[65]

इसमें आज के आदमी की मौकापरस्ती वाली प्रवृत्ति और दोगलेपन को बड़ी बारीकी से दिखाया गया है कि आज मानव किस कदर नीचे गिर गया है।

आधुनिक हिंदी ग़ज़लकारों में डॉ. कुंवर बेचैन का नाम भी उल्लेखनीय है। इनकी ग़ज़लों में प्रेम के साथ–साथ तत्कालीन समाज की विषमताओं और विद्रूपताओं को अपना विषय बनाया है। इन ग़ज़लों में आम आदमी का रोजमर्रा के जीवन के लिए संघर्ष है, उसका दर्द है, इनमें समाज में व्याप्त असमानता, अपराध बोध, शोषण, कुंठा और आम आदमी की पीड़ा है। और इन सबसे निकलने के लिए सर्वहारा क्रांति की आवश्यकता का बोध भी हैः

जहां इंसान की औकात दौलत से बड़ी होगी
महल तनकर खड़े होंगे, झुकी हर झोंपड़ी होगी

जरा सोचो कि मुंह तक रोटियां क्यों नहीं आ पाईं
तुम्हारी ही कलाई में कहीं कुछ गड़बड़ी होगी

समय की अंतड़ी से खून टपकेगा नदी बनकर

नुकीली भूख जिस दिन सामने तन कर खड़ी होगी''[66]

इन कवियों के अतिरिक्त दुष्यंत के बाद हिंदी ग़ज़ल को नई ऊंचाइयों पर पहुंचाने वाले ग़ज़लकारों की फेहरिश्त बहुत लंबी है। दुष्यंत के बाद तो हिंदी ग़ज़ल ने बहुत विकास किया और आज तक अनेक ग़ज़लकारों ने इस विधा में लिख कर इसके विकास में योगदान दिया है, जिससे इस विधा का भविष्य उज्ज्वल दिखाई पड़ता है। इसे विकास की परंपरा से जोड़ कर आगे ले जाने वाले ग़ज़लकारों की लंबी सूची में से कुछ इस प्रकार हैंः अदम गोंडवी, भवानी शंकर, बालस्वरूप राही, बल्ली सिंह चीमा, अवध नारायण मुद्गल, शिवओम अंबर, डॉ. उर्मिलेश, शेरजंग गर्ग, ज़हीर कुरैशी, रामावतार चेतन, धनंजय सिंह, विजय किशोर मानव, नरेंद्र वशिष्ठ, डॉ. नरेश, रामकुमार कृषक, गिरिराज शरण अग्रवाल, राजकुमारी रश्मि, विद्यासागर वर्मा, ओंकार गुलशन, योगेंद्र दत्त, श्याम बेबस, नीर शबनम, सरोजनी अग्रवाल, अंजना संधीर, अजय प्रसून, राजेश मेहरोत्रा, रमेश राज आदि। और इनके अलावा भी अनेकों नाम हैं जिन्होंने ग़ज़ल विधा को एक नया मुकाम प्रदान करने तथा हिंदी ग़ज़ल को विकास प्रदान करने में मुख्य भूमिका निभाई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी ग़ज़ल ने भारतेंदु से लेकर अब तक लगातार विकास किया है और दुष्यंत के बाद तो हिंदी ग़ज़ल लेखन ने नई ऊंचाइयां प्राप्त की हैं। भारतेंदु के समय में ग़ज़ल उर्दू में अच्छा मुकाम हासिल कर चुकी थी, परिस्थितियों और युग के बदलने से हिंदी–उर्दू को करीब लाने के लिए और इनके आपसी विवाद को समाप्त करने के लिए भी उस समय के कवियों ने हिंदी में ग़ज़लें लिखीं। दूसरे, उर्दू के रूप में ग़ज़ल आम लोगों तक अपनी पकड़ बना चुकी थी। और भारतेंदु ने हर ऐसी लोकप्रिय विधा में लेखन किया, जिसकी पकड़ आम लोगों तक हो। इसलिए जो बात वह हिंदी या ब्रज कविता में न कह पाए वह उन्होंने ग़ज़ल में कहने का प्रयास किया। उनकी ग़ज़लों में यथार्थबोध साफ़ दिखाई पड़ता है। लेकिन भारतेंदु के बाद से चाहे प्रसाद हों या निराला हों, हिंदी के जाने माने कवियों ने इस विधा को अपनाने का प्रयास किया। परंतु दुष्यंत से पहले केवल शमशेर को छोड़ कर यह विधा उस रूप में हिंदी कवियों से नहीं

सध पाई, जिस मुकाम पर उर्दू ने इस विधा को बैठा दिया था। दरअसल इसकी वजह हिंदी के कवियों का हिंदी ग़ज़ल लिखना एक बुनियादी सरोकार के रूप में नहीं रहना है। दुष्यंत से पहले हिंदी ग़ज़ल लेखन को हिंदी कवियों ने बुनियादी सरोकार के रूप में नहीं अपनाया। उन्होंने केवल इस विधा में हाथ आजमाने के लिए लिखा।

दूसरा, हिंदी ग़ज़ल के पास उर्दू ग़ज़ल की तरह फ़ारसी की समृद्ध विरासत नहीं थी। जैसे कि उर्दू भाषा ने फ़ारसी के खजाने को अपनाकर अपने को समृद्ध किया, वैसे हिंदी ग़ज़ल उर्दू या फ़ारसी के उस खजाने को सर्जनात्मक रूप से नहीं अपना पाई। यही कारण है कि हिंदी ग़ज़ल दुष्यंत से पहले वह मुकाम हासिल नहीं कर पाई।

दुष्यंत कुमार हिंदी ग़ज़ल विधा के लिए उस ध्रुव तारे के समान उद्दीप्त हुए, जिन्होंने हिंदी ग़ज़ल को न केवल राह दिखाई, बल्कि उसके भविष्य को भी प्रज्ज्वलित किया। अतः हम कह सकते हैं कि हिंदी ग़ज़ल का विकास अपनी गति दुष्यंत कुमार के बाद ही पकड़ता है।

संदर्भ सूची

[1] ओमप्रकाश सिंह (सं.), **भारतेंदु हरिश्चंद्र ग्रंथावली–1**, पृ.114

[2] डॉ. अशोक तिवारी, **हिंदी साहित्य का इतिहास,** पृ.222

[3] हजारी प्रसाद द्विवेदी, **हिंदी साहित्य का उद्‌भव और विकास,** पृ.197

[4] डॉ. बच्चन सिंह, **हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास,** पृ.305–306

[5] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, **हिंदी साहित्य का इतिहास,** पृ. 423

[6] वही, पृ. 297

[7] वही, पृ. 297

[8] रामविलास शर्मा, **परंपरा का मूल्यांकन,** पृ.103

[9] डॉ. बच्चन सिंह, **हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास,** पृ.287

[10] वही, पृ. 287

[11] डॉ. रामविलास शर्मा, **परंपरा का मूल्यांकन,** पृ. 104

[12] डॉ. बच्चन सिंह, **हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास,** पृ. 309

[13] डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, **हिंदी ग़ज़ल उद्‌भव और विकास** में उद्धृत, पृ.177–178

[14] वही, पृ.178

[15] ओमप्रकाश सिंह(सं.), **भारतेंदु हरिश्चंद्र ग्रंथावली–3**, पृ.104–105

[16] वही, पृ.326

[17] डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, **हिंदी ग़ज़लः उद्‌भव और विकास** में उद्धृत, पृ.181

[18]वही, पृ. 181

[19] वही, पृ. 181

[20] वही, पृ.182

[21] ज्ञान प्रकाश विवेक, **हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा** में उद्धृत, पृ.48

[22] ज्ञान प्रकाश विवेक, **हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा**, पृ.48

[23] डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, **हिंदी ग़ज़ल उद्‌भव और विकास**, पृ.184–185

[24] वही, पृ.185

[25] आचार्य रामचंद्र शुक्ल, **हिंदी साहित्य का इतिहास**, पृ.429

[26] डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, **हिंदी ग़ज़लः उद्‌भव और विकास**, पृ.185

[27] वही, पृ.185

[28] वही, पृ.186

[29] वही, पृ.189

[30] वही, पृ.190

[31] डॉ. सरदार मुजावर, **हिंदी की छायावादी ग़ज़ल,** पृ.54

[32] वही, पृ.54

[33] वही, पृ.57

[34] ज्ञान प्रकाश विवेक, **हिंदी गजल की विकास यात्रा,** पृ.50

[35] डॉ. सरदार मुजावर**, हिंदी की छायावादी ग़ज़ल,** पृ.58

[36] डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, **हिंदी ग़ज़ल : उद्‌भव और विकास**, पृ.196

[37] डॉ. सरदार मुजावर**, हिंदी की छायावादी ग़ज़ल,** पृ. 98

[38] वही, पृ.100

[39] वही, पृ.70

[40] वही, पृ.87

[41] ज्ञान प्रकाश विवेक, **हिंदी गजल की विकास यात्रा**, पृ.51

[42] डॉ. सरदार मुजावर**, हिंदी की छायावादी ग़ज़ल,** पृ. 93

[43] ज्ञान प्रकाश विवेक, **हिंदी गजल की विकास यात्रा**, पृ.52

[44] डॉ. रामखिलावन तिवारी, **माखनलाल चतुर्वेदीः व्यक्ति और काव्य**, पृ, 27

[45] डॉ. नरेश, **आधुनिक हिंदी कविता में उर्दू के तत्व**, पृ.69

[46] डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, **हिंदी ग़ज़ल उद्‌भव और विकास**, पृ.197

[47] वही, पृ.198

[48] वही, पृ.200

[49] वही, पृ.201

[50] वही, पृ.202

[51] वही, पृ.202–203

[52] वही, पृ.203

[53] ज्ञान प्रकाश विवेक, **हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा**, पृ.57

[54] वही, पृ.57

[55] नामवर सिंह (सं.), **शमशेर बहादुर सिंहः प्रतिनिधि कविताएं**, पृ.25

[56] रंजना अरगड़े (सं.), **शमशेर बहादुर सिंहः सुकून की तलाश**, पृ.20

[57] डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, **हिंदी ग़ज़ल उद्‌भव और विकास** में उद्धृत, पृ.205

[58] वही, पृ.205

[59] त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल,** पृ.102

[60] दुष्यंत कुमार, **साये में धूप**, पृ.13

[61] डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, **हिंदी ग़ज़लः उद्‌भव और विकास** में उद्धृत, पृ.207

[62] वही, पृ.209

[63] वही, पृ.209

[64] वही, पृ.247

[65] वही, पृ.210

[66] डॉ. कुंवर बेचैन, **शामियाने काँच के**, पृ.43

□ दूसरा अध्याय

हिंदी ग़ज़ल संबंधी बहसें और दृष्टियाँ

हिंदी ग़ज़ल से संबंधित बहसों और दृष्टियों या आग्रहों पर विचार करने से पहले हमें यह जान लेना आवश्यक होगा कि 'ग़ज़ल' आखिर है क्या? इसकी उत्पत्ति कैसे हुई? हम किसे ग़ज़ल की संज्ञा देंगे? उसके उपरांत हम हिंदी ग़ज़ल संबंधी बहसों और दृष्टियों पर ठीक से विचार कर सकेंगे।

दरअसल ग़ज़ल फ़ारसी–उर्दू की एक लोकप्रिय काव्य विधा है। ग़ज़ल अरबी भाषा का शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ है–'औरतों से बातें करना' या 'औरतों के विषय में बातें करना'। ग़ज़ल शब्द है तो अरबी पर अरबी में ग़ज़लें अधिक नहीं मिलती हैं। फ़ारसी में ग़ज़लें बड़े पैमाने पर मिलती हैं। फ़ारसी में भी इस ग़ज़ल शब्द को–वाज़नान, गुफ़्तगू करदन से व्याख्यायित किया गया है। सार यही है कि 'ग़ज़ल' शब्द का तात्पर्य औरतों से प्यार भरी बातचीत करना है।

'ग़ज़ल' शब्द की उत्पत्ति के संबंध में दूसरा मत है कि 'ग़ज़ल' शब्द 'ग़ज़ाला' से बना है। फ़ारसी में 'ग़ज़ल' का अर्थ होता है 'हिरन' और उसके बच्चे को 'ग़ज़ाला' कहा जाता है। शिकारी जब हिरन के बच्चे का शिकार करते थे तो तीर लगने के पश्चात उस बच्चे का क्रंदन अथवा अतिनाद अंततः 'ग़ज़ल' के रूप में प्रसिद्ध हुआ। ग़ज़ल यानी वेदना! अथवा आर्तनाद! यह ग़ज़ल का एक शाब्दिक अर्थ है।

'ग़ज़ल' की व्युत्पत्ति के संदर्भ में कुछ के मतानुसार अरब में ग़ज़ल नामक एक कवि था जिसने अपनी सारी आयु प्रेम एवं मस्ती में ही बिता दी। उसकी कविताओं का वर्ण्य विषय सदैव प्रेम ही हुआ करता था। अतः कालांतर में इस कवि के नाम पर प्रेमपरक कविताओं को ग़ज़ल की संज्ञा दी गई।''[1]

दरअसल ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में यदि हम ग़ज़ल विधा की व्युत्पत्ति पर गौर करते हैं तो पाते हैं कि ग़ज़ल विधा की व्युत्पत्ति का संबंध अरबी के कसीदे और ईरान की चामा काव्य विधा से है।

कसीदा एक ऐसी विधा थी जिसकी शुरुआत की कुछ पंक्तियों को तशबीब कहा जाता था। तशबीब वस्तुतः शृंगारिक अथवा प्रेम कविता का ही एक रूप था। तशबीब यानी कसीदे से पूर्व की पंक्तियाँ! और यही तशबीब, एक स्वतंत्र विधा ग़ज़ल के रूप में सामने आई।

दरअसल कसीदे राजाओं की तारीफ़ में लिखे जाते थे और शायर अपनी रोजी–रोटी चलाने के लिए शासकों की झूठी तारीफ़ करता था। विलासी राजाओं को कवि वही सुनाता था जिससे वह ख़ुश होते थे। विलासी राजा औरतों के ज़िक्र से ख़ुश होते थे तो शायर औरतों और शराब का जिक्र ही ग़ज़लों में करने लगे। इस तरह ग़ज़ल का मतलब ही औरतों के बारे में बातें करना हो गया।

दूसरे, ग़ज़ल को उस समय ईरान में प्रचलित काव्य–विधा चामा से भी जोड़ा जाता है। चामा हिंदी गीत की भाँति कविता भी थी और साथ ही संगीत भी। चूँकि ग़ज़ल स्वभावतः गीत पर ही आधारित है, इसलिए विद्वानों ने इसे अरबी की तशबीब के बजाय ईरानी चामा काव्य विधा से भी जोड़ कर देखा और ग़ज़ल पर चामा के प्रभाव को माना।

इस प्रकार यह बात स्पष्ट होती है कि ग़ज़ल किसी–न–किसी रूप में अरब से होते हुए ईरान पहुँची और ईरानी कवियों ने फ़ारसी में ग़ज़लें लिखीं। ''फ़ारसी–कवियों ने जब इस विधा को अरबी से उधार लिया तो उन्होंने शिल्पगत सीमाओं के पालन में तो अरबी–ग़ज़लकारों का अनुकरण किया, लेकिन विषयवस्तु की दृष्टि से वे अरबी–ग़ज़लकारों से आगे निकल गए। उन्होंने अरबी–ग़ज़ल की कथावस्तु को आधार बनाकर बात तो दैहिक अथवा भौतिक प्रेम की ही की लेकिन अर्थ–विस्तार द्वारा दैहिक

प्रेम को आध्यात्मिक प्रेम में परिणत कर दिया। फ़ारसी–ग़ज़ल में अरबी–ग़ज़ल का 'इश्के–मजाज़ी' 'इश्के–हक़ीक़ी' में बदल गया।''[2]

ग़ज़ल की उत्पत्ति संबंधी बातों पर विचार करने के बाद हम पाते हैं कि ग़ज़ल की उत्पत्ति के संबंध में प्रायः मतभेद रहा है। परंतु इतना अवश्य है कि ग़ज़ल प्रेमाभिव्यक्ति का सशक्त एवं प्रभावोत्पादक माध्यम है।

समय–समय पर विभिन्न विद्वानों ने ग़ज़ल संबंधी अपनी अवधारणा पेश की है, और ग़ज़ल को परिभाषित करने का प्रयास किया है। उर्दू साहित्य के सुप्रसिद्ध आलोचक मौलाना अल्ताफ हुसैन हाली के मतानुसार ''जहाँ तक ग़ज़ल की मूल प्रकृति का संबंध है, उसका विषय प्रेम के अतिरिक्त कुछ और नहीं।''[3] वह कहते हैं कि ''ग़ज़ल में जैसा कि विदित है किसी विशेष विषय का क्रमबद्ध वर्णन नहीं होता, अपितु अलग–अलग विचार, अलग–अलग पद्यों में व्यक्त किए जाते हैं। अपने वर्तमान रूप में ग़ज़ल का प्रचलन पहले ईरान में और कोई डेढ़ सौ वर्ष से भारत में हुआ है। यद्यपि मूलतः ग़ज़ल की रचना जैसा कि ग़ज़ल शब्द से प्रकट है, केवल प्रेम सम्बन्धी विषयों की अभिव्यक्ति के लिए हुई थी किंतु बहुत दिनों के बाद उसका यह रूप सुरक्षित न रह सका।''[4]

उर्दू के ही दूसरे कवि आलोचक फ़िराक़ गोरखपुरी ने ग़ज़ल के विषय में लिखा है, ''ग़ज़ल असंबद्ध कविता है। ग़ज़ल का मिज़ाज मूलतः समर्पणवादी होता है।''[5]

हिंदी साहित्य के सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. नगेंद्र ने भी ग़ज़ल के विषय में लिखा है, ''ग़ज़ल उर्दू का सर्वाधिक प्रसिद्ध और सरस भेद है। उसका स्थायी भाव प्रेम है, जिसमें रहस्यानुभूति, मस्ती, हिंदी, धार्मिक विद्रोह आदि भावनाएँ संचारी रूप में ओतप्रोत रहती हैं। विषय के अनुरूप उसका एक विशिष्ट काव्यरूप भी है जो मतला, मक़ता गिरह, क़ाफ़िस और रदीफ़ में परिबद्ध रहता है।''[6]

चानन गोविंदपुरी के अनुसार, ''ग़ज़ल उर्दू कविता का सर्वश्रेष्ठ अनूठा और सशक्त काव्यरूप है। इसका जन्म फ़ारसी भाषा में हुआ, फिर उर्दू वालों ने इसको अपनाया और इसने हमारे देश में आकर अपने रचनात्मक स्वरूप के शिखर बिंदुओं को छुआ है।''[7]

डॉ. नरेश के मतानुसार, ''ग़ज़ल में प्रेम भावनाओं का चित्रण होता है। ग़ज़ल की असली कसौटी भावोत्पादकता मानी जाती है।''[8]

इनके अतिरिक्त हिंदी ग़ज़लकारों ने भी समय–समय पर अपने ग़ज़ल संबंधी विचारों को व्यक्त किया है। सरदार मुजावर द्वारा लिए गए विभिन्न हिंदी ग़ज़लकारों के साक्षात्कार में हमें उनके ग़ज़ल विषयक विचारों का पता चलता है।

आधुनिक हिंदी साहित्य के सुप्रसिद्ध कवि त्रिलोचन शास्त्री ग़ज़ल के संबंध में कहते हैं कि यह ''काव्य की एक विधा है, गेयता जिसमें शर्त है। ग़ज़ल गाई भी जा सकती है जैसे–गीत, लेकिन गीत और ग़ज़ल में भारी अंतर है। गीत में कोई एक ही विषय व स्थिति रह सकती है, ग़ज़ल का हर शेर स्वतंत्र होता है।''[9]

सुप्रसिद्ध हिंदी ग़ज़लकार चंद्रसेन विराट कहते हैं कि ''मेरी नज़र में ग़ज़ल एक ऐसी छंदोबद्ध काव्य रचना, विधा है जिसमें कवि को हर शेर में विभिन्न कथ्य प्रतिपादित करने की छूट है तथापि संपूर्ण काव्य रचना में एक विशिष्ट छंद विधान का अनुशासन पालित है एवं एक सांस्कृतिक भावमयी, संप्रेषणयुक्त रससिक्त भाव–व्यंजना अनुस्यूत है।''[10]

भवानी शंकर के अनुसार, ''ग़ज़ल एक छंदबद्ध स्वतंत्र काव्य विधा है। इसमें कम–से–कम पाँच और अधिकतम ग्यारह शेर कहे जाते हैं। शेर को यूँ कहा जाना चाहिए जैसे कि गागर में सागर समा गया हो।''[11]

ज़हीर कुरैशी के मतानुसार, ''ग़ज़ल एक ऐसी काव्य विधा है जिसमें अनेक विषयों पर टुकड़े–टुकड़े बातचीत की जाती है। जिसका हर शेर अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है–और स्वतंत्र शेर में एक स्वतंत्र चिंतन प्रक्रिया होती है।[12]

डॉ. गणेशदत्त सारस्वत ग़ज़ल के विषय में कहते हैं, ''अनुभूति की तीव्रता एवं संगीतात्मकता से युक्त ऐसी काव्य–विधा, जो जीवन के यथार्थ को प्रतीकों एवं बिंबों के सहारे विभिन्न 'शेरों' के माध्यम से सामाजिक व्यवहार की भाषा में प्रस्तुत करती है।''[13]

डॉ. हनुमंत नायडू के अनुसार, ''ग़ज़ल मानव–मन की पीड़ा को वाणी देने वाली गेय–काव्य की एक लोकप्रिय विधा है जिसमें थोड़े से शब्दों के माध्यम से किसी बात को अत्यंत प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त करने की क्षमता होती है।''[14]

ज्ञान प्रकाश विवेक कहते हैं ''ग़ज़ल मूड और मिज़ाज का नाम है। जिस ग़ज़ल में ग़ज़ल का मूड और मिज़ाज नदारद है, वह ग़ज़ल हो ही नहीं सकती।''[15]

ग़ज़ल संबंधी इन परिभाषाओं पर विचार करके हमें ग़ज़ल के विषय में उसकी प्रकृति के विषय में और भी अधिक स्पष्ट होने में सहायता मिली। परंतु ये सभी परिभाषाएं या अवधारणाएं ग़ज़ल की किसी न किसी ख़ास विशेषता या उसकी किसी ख़ास प्रवृत्ति की ओर ही इशारा करती हैं और इनमें आपस में भी कुछ अंतर्विरोध दिखाई पड़ता हैं। इससे हमें यह भी देखने को मिलता है कि ग़ज़ल संबंधी एक निश्चित परिभाषा देना कितना कठिन है। जैसा कि ज्ञानप्रकाश विवेक कहते हैं, ''दो मिसरों की सबसे आसान और सबसे कठिन विधा है ग़ज़ल।''[16] परंतु इन सब परिभाषाओं के बाद हमारे ज़हन में ग़ज़ल विषयक तस्वीर तो साफ़ हो ही जाती है। और हम कह सकते हैं कि ग़ज़ल एक ऐसी गेयात्मक काव्य विधा है जिसमें मन के भावों को सशक्त रूप से अभिव्यक्त किया जाता है। प्रारंभ में यह केवल नारी विषयक प्रेम चित्रण तक ही सीमित थी परंतु समय के साथ–साथ इसने अपनी इस सीमा को पार कर सामाजिक, राजनीतिक भावभूमि पर खड़े होकर आम–आदमी के मानस में दबी

पीड़ा व छटपटाहट को स्वर प्रदान किए। इसने जीवन के तमाम चित्रों को ख़ूबसूरती से उकेरा है। यह अपने छोटे–से कलेवर में सब कुछ समेटे हुए है। इसमें गूढ़ से गूढ़ तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयों को कम–से–कम और सादा शब्दों में प्रभावोत्पादकता के साथ व्यक्त किया जाता है।

ग़ज़ल शेरों के माध्यम से कही जाती है, जिसमें प्रत्येक शेर कथ्य की दृष्टि से तो अलग होता है परंतु संपूर्ण काव्य रचना एक विशिष्ट छंद विधान के अनुशासन में बंधी होती है। यह एक छंदोबद्ध काव्य विधा है। इसमें मतला, रदीफ, काफ़िया और मक़ता का निर्वाह किया जाता है। यह एक अत्यंत सुगठित एवं रागात्मक काव्य विधा है।

ग़ज़ल का भाव पक्ष

ग़ज़ल में प्रेम–भावनाओं के विविध स्वरूपों का चित्रण होता है। फ़ारसी साहित्य में प्रेम के दो रूप स्वीकार किए जाते हैं। पहला, 'इश्क़े हक़ीक़ी' दूसरा 'इश्क़े मजाज़ी'।

'इश्क़े हक़ीकी' का अर्थ अलौकिक प्रेम से है। इसमें भक्ति, ईश्वर–प्रेम और संसार की नश्वरता से संबंधित प्रसंग आते हैं। 'इश्क़े मजाज़ी' लौकिक प्रेम या सांसारिक प्रेम को कहते हैं, इसमें प्रेमी और प्रेमिका के भौतिक प्रेम संबंधी प्रसंग आते हैं।

सूफ़ी कवियों ने 'इश्क़े हक़ीक़ी' की ग़ज़लें कहीं हैं। इसमें ईश्वर को प्राप्त करने के लिए प्रेम का सहारा लिया जाता है। इस प्रेम को आध्यात्मिक बनाने तथा इसे वासनात्मक प्रभाव से दूर करने के लिए सूफ़ियों ने अपने प्रेम का प्रतीक 'पुरुष' को रखा। इसलिए फ़ारसी और उर्दू ग़ज़ल में माशूक़ के लिए प्रायः पुल्लिंग संबोधन का ही प्रयोग किया जाता है। जैसेः

तू नहीं जानता, मेरी चाहत अजीब है
मुझको मना रहा है, कभी ख़ुद ख़फ़ा भी हो[17]

''फ़ारसी साहित्य में 'इश्क़े हक़ीक़ी' को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। फ़ारसी कवियों ने अपनी ग़ज़लों में अलौकिक प्रेमी की सुंदरता, उससे मिलने की उत्कंठा एवं उसके रंग में रंग जाने की ललक को स्वर दिया है। इन कवियों की ग़ज़लें साधारण पाठक को लौकिक प्रेम की रसानुभूति कराती हैं। किंतु वास्तव में वे अलौकिक प्रेम की ओर संकेत करती हैं। इस प्रकार फ़ारसी ग़ज़लों का भाव पक्ष 'इश्के हक़ीक़ी' या अलौकिक प्रेम से संपन्न है।''[18]

इसके विपरीत उर्दू की शुरुआती ग़ज़ल में 'इश्क़े मजाज़ी' यानी सांसारिक प्रेम का अधिक वर्णन हुआ है। मुग़लों के शासनकाल में उर्दू ग़ज़ल में सांसारिक प्रेम के शब्द चित्र अधिक देखने को मिलते हैं। वह सामंतवाद का दौर था और शराब और सुंदरियों के साहचर्य में विलासपूर्ण जीवन जी रहे शासकों के लिए शृंगार विषयक रचनाएँ अधिक लिखी गईं।

''दरबार लगता था, महफिल सजती थी और शासकों को ख़ुश रखने के लिए, प्रसन्न रखने के लिए ग़ज़लें लिखी जाने लगीं–कही जाने लगीं। इस प्रकार ग़ज़ल में इश्क़, हुस्न, साक़ी और जाम वाला रूमानी अंदाज़ शुरू हुआ। ग़ज़ल का प्रभाव समाज में बढ़ता गया और ग़ज़ल एक लोकप्रिय विधा बन गई।''[19]

''उर्दू ग़ज़लों में प्रेम के विविध स्वरूपों यथा मिलन की अभिलाषा, प्रियतम का अत्याचार, एक प्रिय को लेकर दो प्रतिद्वंद्वियों में पारस्परिक ईर्ष्या, प्रिय का नखशिख वर्णन, प्रतिज्ञा भंग या बेवफ़ाई से लेकर शराब, साक़ी, प्याला, सुराही आदि से युक्त भावनाओं की इंद्रधनुषी झलक मिलती है।''[20]

इस संबंध में मिर्जा सौदा का एक शेर देखा जा सकता है, जिसमें उन्हें प्रिय की नज़रों के असर से पानी भी शराब जैसा मालूम पड़ता हैः

टूटे तेरी निगह से अगर दिल हबाब का
पानी भी फिर पियें तो मज़ा हो शराब का[21]

इस प्रकार उर्दू ग़ज़ल में इश्के मजाज़ी के अंतर्गत सांसारिक प्रेम की प्रवृत्तियों का चित्रण होने लगा। उनमें जारी विषयक प्रेम और श्रृंगारिक वर्णनों की भरमार होने लगी। उनमें नएपन का अभाव पैदा हो गया एवं उर्दू ग़ज़लकार एक ही परिपाटी की रचनाएँ करने लगे। ऐसे समय में ''तभी उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में मौलाना अल्ताफ़ हुसैन हाली ने ग़ज़ल के इतिवृत्तात्मक स्वरूप के विरुद्ध आवाज़ उठाई। उनका विरोध लखनवी शैली की उस निष्प्राण कविता से था जिसमें चेतना का स्तर निम्न था और स्वाभाविकता का अभाव, जिसमें भोंडी कल्पना और शाब्दिक खिलवाड़ के साथ ही निम्न कोटि की वासना का भी पुट रहता है।''[22]

मुगल शासन की समाप्ति के बाद और मौलाना अल्ताफ़ हुसैन हाली के प्रयासों से उर्दू ग़ज़ल ने एक नई दिशा प्राप्त की। अब समय बदल चुका था। ग़ज़ल अब आशिक़–माशूक़ के प्रेम से बाहर निकल यथार्थ के धरातल पर उतर आई। उसने देश–प्रेम और मानव–प्रेम को अपना विषय बनाया। ग़ज़ल में अब भूख, निर्धनता और पीड़ित मानव की यथार्थ दशाओं का चित्रण होने लगा। ''ग़ज़ल के भावों में एक क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ एवं ग़ज़ल का भाव–पक्ष यथार्थवाद एवं सामाजिक चेतना से संबद्ध हो गया।''[23] इस प्रकार की ग़ज़लें लिखने वालों में हसरत मोहानी, फ़ानी बदायूँनी, असगर गोंडवी, फ़ैज़ अहमद फ़ैज़, फ़िराक गोरखपुरी, डॉ. इकबाल और साहिर लुधियानवी आदि प्रमुख हैं। जिन्होंने ग़ज़ल को आम जन से जोड़ा और उसे ज़िंदगी की सच्चाइयों से रू–ब–रू कराया। साहिर लुधियानवी समाज में व्याप्त रूढ़ियों, परंपराओं संकीर्ण विचारों और बुराइयों पर चोट करते हैं। वह आशंकित हैं कि जाने कब समाज की यह बुराइयाँ ख़त्म होंगी। वह कहते हैं:

वही जुल्मत है फ़जाओं पे अभी तक जारी
जाने कब ख़त्म हो इंसां के लहू की तक़रीर[24]

साथ ही वह उस सुबह का भी इंतजार करते हैं जब संसार में कोई दुख–दर्द नहीं होगा, समाज में सभी समान होंगे। वह ऐसे समाज और संसार के लिए आशान्वित हैं और आने वाले कल के लिए नए ख़्वाब बुनने का आग्रह करते हैं:

आओ कि कोई ख़्वाब बुनें कल के वास्ते[25]

साहिर समाज की रूढ़ियों, परंपराओं, संकीर्ण विचारों एवं बुराइयों को दूर करना चाहते हैं। वह समाज की बनी बनाई लीक पर नहीं चलना चाहते हैं। वह जीवन को अपने अनुसार जीना चाहते हैं:

भड़का रहे हैं आग लबे–नग्मागर से हम
खामोश क्या रहेंगे जमाने के डर से हम

कुछ और बढ़ गये जो अँधेरे तो क्या हुआ
मायूस तो नहीं है तूल–ए–सहर से हम[26]

इस तरह हम देखते हैं कि फ़ारसी ग़ज़ल में 'इश्क़े हक़ीक़ी' भावपक्ष के रूप में रहा तो उर्दू ग़ज़ल में 'इश्के मजाज़ी' का भाव विद्यमान रहा। परंतु समय के साथ–साथ इसमें परिवर्तन आया। ग़ज़ल ने सामाजिक सरोकारों से अपने को जोड़ा और यथार्थवादी दृष्टिकोण को, अपनी सामाजिक चेतना को अभिव्यक्त किया। इसने आम जन की पीड़ा, उसके यथार्थ को वाणी दी है। इसने समाज में अपनी भूमिका को पहचान उसका निर्वाह भली–भाँति किया है।

इसके साथ यदि हम हिंदी ग़ज़ल की बात करें तो हिंदी ग़ज़ल भावपक्ष की दृष्टि से प्रगतिशील उर्दू ग़ज़ल के ज्यादा नज़दीक है। हालाँकि उर्दू की परंपरागत ग़ज़ल का प्रभाव भाव की दृष्टि से हिंदी की शुरुआती ग़ज़ल पर देखने को मिलता है। जिसके परिणामस्वरूप उर्दू शायरी की भाँति हिंदी में भी प्रेम, श्रृंगार आदि की परंपरागत ग़ज़लें लिखी गईं। परंतु यह प्रभाव उतना अधिक नहीं है क्योंकि एक तो उर्दू शायरी स्वयं उससे बाहर निकल चुकी थी। दूसरे, हिंदी में ग़ज़लें जिस समय लिखी गईं, तब

समाज में कुंठा, संत्रास एवं जनमानस के जीवन में व्याप्त विसंगतियों का बोलबाला था। अतः हिंदी के अधिकांश कवियों ने जीवन के भोगे हुए यथार्थ का वर्णन किया। हिंदी ग़ज़ल का भावपक्ष राजनीतिक एवं सामाजिक यथार्थ से जुड़ा हुआ है। हिंदी ग़ज़ल में समकालीन समाज की विसंगतियों, रूढ़ियों, विद्रूपताओं, विशेषताओं, अंतर्विरोधों और सभी प्रकार के उत्थान–पतन का चित्रण हुआ है। हिंदी ग़ज़ल में समकालीन समाज अपने संपूर्ण रूप में उजागर हुआ है। मोहभंग इस हिंदी ग़ज़ल का महत्त्वपूर्ण पहलू है। यह मोहभंग आज़ादी से है, नेताओं से है, सरकारी तंत्र से, नौकरशाही से है, जिसने आम जन को न जाने क्या–क्या सपने दिखाए, उसे झूठे आश्वासन दिए, परंतु सब व्यर्थ समाज में आर्थिक व सामाजिक विषमता और भी ज्यादा गहराती गई। इस संदर्भ में दुष्यंत लिखते हैं:

कहाँ तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए,
कहाँ चिराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिए[27]

हिंदी ग़ज़ल संत्रास के क्षणों में लिखी गई है और इन ग़ज़लों में आक्रोश का स्वर मुख्य है। आज की हिंदी ग़ज़ल आधुनिक समाज के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक यथार्थ का आईना है:

कल नुमाइश में मिला वो चीथड़े पहने हुए,
मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिंदुस्तान है[28]

इस तरह हम पाते हैं कि भावपक्ष की दृष्टि से उर्दू ग़ज़ल का प्रभाव हिंदी ग़ज़ल पर पड़ता है। लेकिन हिंदी ग़ज़ल और उर्दू ग़ज़ल आज के समय में एक दूसरे से सीखते–सिखाते आगे बढ़ रही है। हिंदी ग़ज़लों में आधुनिक प्रगतिशील उर्दू ग़ज़ल की भाँति सामाजिक यथार्थ ही मुख्य भाव है।

ग़ज़ल का शिल्प–विधान

प्रत्येक साहित्यिक विधा अपने विशेष शिल्प–सौष्ठव से जानी जाती है। शिल्प किसी भी रचना या विधा का नियम होता है। जिसके तहत किसी विधा की रचना होती है। ग़ज़ल भी एक काव्य विधा है जिसकी रचना से संबंधित कुछ नियम हैं, जिन्हें आधार बनाकर ग़ज़ल लिखी जाती है। ग़ज़ल का भी अपना एक अलग शिल्प–विधान है। जिससे ग़ज़ल का स्वरूप यानी बाह्य आकार और रूप बनता है। अतः ग़ज़ल विधा को समझने के लिए उसके शिल्प–विधान को समझना अत्यंत आवश्यक है। ग़ज़ल कुछ निश्चित बहरों पर आधारित होती है। जिन्हें हम छंद कह सकते हैं। इसके अतिरिक्त शेर, मतला, मक़ता, काफिया, रदीफ, मिसरा आदि ग़ज़ल के प्रमुख अंग हैं। ''शिल्प की दृष्टि से ग़ज़ल काफ़िया, रदीफ के बंधन में रहकर, एक लयखंड में रचे गए विभिन्न शेरों की माला होती है, जिसका पहला मनका 'मतला' और अंतिम मनका 'मक़ता' होता है।''[29]

संरचनात्मक दृष्टि से देखें तो ग़ज़ल एक शायर द्वारा एक ही बहर (छंद) में समान क़ाफ़िए और एक ही रदीफ़ के साँचे में ढाले गए कम–से–कम तीन और अधिक–से–अधिक पच्चीस शेरों का संकलन ग़ज़ल कहलाता है जिसका अपना निजी शिल्प, अंदाज़ और मिज़ाज होता हैं।

बहर–काव्य और गद्य को अलग करने वाला तत्व लय होता है। जिसमें लय है वह काव्य और जिसमें लय नहीं वह गद्य कहलाता है। उसी प्रकार ग़ज़ल विधा की आत्मा है 'लय' जिसके अनुसार ग़ज़ल की रचना होती है। 'लय' ग़ज़ल का सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व है। जो बहर (छंद) कहलाता है। बहर ग़ज़ल का पैमाना या मीटर होता है, जिससे परख कर ग़ज़ल की जाँच की जाती है। एक ग़ज़ल के सभी शेर एक ही बहर में होते हैं। पूरी ग़ज़ल का एक ही बहर में होना आवश्यक होता है। ग़ज़ल के लेखन के प्रारंभ में ही ग़ज़लकार को यह तय करना होता है कि वह ग़ज़ल किस बहर में लिखेगा। जो बहर ग़ज़लकार ग़ज़ल के लिए चुनता है उसे पूरी ग़ज़ल उसी बहर में

लिखनी होती है। ऐसा नहीं कि ग़ज़ल का एक अश्आर एक बहर में हो और दूसरा दूसरी बहर में। ऐसा करने पर ग़ज़ल का अनुशासन भंग होगा और ग़ज़ल का संतुलन बिगड़ जाएगा और ग़ज़ल ग़ज़ल नहीं रहेगी। हालाँकि ग़ज़ल के इस नियम को तोड़कर कुछ ग़ज़लकारों ने बे–बहर ग़ज़लों की भी रचना प्रयोग स्वरूप की, परंतु वह सफल नहीं हुईं। ग़ज़ल का जो शिल्प है वह अनुशासन की माँग करता है। यदि ग़ज़ल का अनुशासन भंग होगा तो ग़ज़ल का सौंदर्य भी भंग हो जाएगा।

उर्दू–फ़ारसी में कुल उन्नीस बहरें मानी गई हैं। लेकिन सभी उन्नीस बहरों में ग़ज़लें नहीं कही जाती हैं। मुख्यतः पाँच–सात बहरों का ही प्रयोग ग़ज़ल लेखन के लिए किया जाता है।

''उर्दू–फ़ारसी में कुल उन्नीस बहरें प्रचलित है, जिनमें पंद्रह बहरें जनाब खलील–बिन–अश्मद बसरी द्वारा निर्मित हैं तथा अन्य चार बहरें अबुल हसन बजर चमहर तथा मौलाना यूसुफ़ द्वारा निर्मित हैं। इन्हीं उन्नीस बहरों पर उर्दू–फ़ारसी का संपूर्ण छंदशास्त्र (उरूज़) आधारित है।''[30]

''**रूक्न** : बहर के अरकान और अरकान के हर हिस्से को गण या रूक्न कहते हैं।

अरकान : बहर जिन टुकड़ों से बनती है उनको अरकान कहते हैं। रूक्न का बहुवचन अरकान है।

रूक्नों की संख्या : उर्दू शायरी में कुल नौ रूक्न प्रचलित हैं जो इस प्रकार हैं–

1. फ़ाऊलुन 2. फ़ाईलुन, 3. मफ़ाईलुन,
4. मुस्तफ़ाईलुन 5. मुतफ़ाईलुन, 6. फ़ाइलातुन,
7. मफ़ऊलात, 8. फउल, 9. फेलुन।

बहरें : बहरें दो प्रकार की होती हैं:

- मुदर्रिफ बहरें
- मुर्रक्क़ब बहरें

- **मुदर्रिफ बहरें**–जो बहरें एक ही रूक्न की बार–बार आवृत्ति से बनती हैं वे मुदर्रिफ बहरें कहलाती है। यह आवृत्ति सात या आठ बार हो सकती है।

  मुदर्रिफ बहरें सात हैं :

1. **बहरे हजज**–इसका शाब्दिक अर्थ 'अच्छी आवाज़' है। प्रारंभ में यह बहर अरबी भाषा में कविताओं के लिए प्रचलित थी जिसे कालांतर में उर्दू–फ़ारसी कवियों ने भी अपनाया। यह 'मुफ़ाईलुन' की आवृत्ति से बनती है।

2. **बहरे रजज**–इस बहर में 'मुस्तफ़ाइलुन' की आवृत्ति होती है जिसे गुनगुनाते हुए उसी वज़न पर कविता लिखी जा सकती है।

3. **बहरे रमल**–इस बहर में आबद्ध कविताएँ जल्दी–जल्दी पढ़ी जाती हैं। यह 'फ़ाइलातुन' की आवृत्ति से बनती है।

4. **बहरे मुतक़ारिब**–इस बरह में कर्ता और कर्म एक–दूसरे के पास–पास होते हैं। यह 'फ़ऊलुन' की आवृत्ति से बनती है।

5. **बहरे मुतदारिक**–इसका शाब्दिक अर्थ 'मिलन' है। यह बहर अबुल हसन अख़फ़स द्वारा निर्मित है। जिसे कालांतर में ख़लील–बिना अश्मद–बसरी द्वारा निर्मित बहरों में शामिल कर लिया गया। इसमें 'फ़ाइलुन' की आवृत्ति होती है।

6. **बहरे कामिल**–यह बहरे रजज के काफ़ी समीप है। यह बहर 'मुतफ़ाइलुन' की आवृत्ति से बनती है।

7. **बहरे वाफ़िर**–इस बहर में गति की अधिकता होती है। अर्थात इस बहर में आबद्ध कविताएँ भी बहरे रमल की भाँति जल्दी–जल्दी पढ़ी जाती है। यह मुफ़ाइलतुन की आवृत्ति से बनी है।

- **मुर्रक्क़ब बहरें**–जो बहरें अरकान (रूक्न का बहुवचन) से मिलकर बनी हैं मुर्रक्क़ब बहरें कहलाती हैं और ये बारह हैं :

1. **बहरे मुंसरेह**–इस बहर में कर्म में कर्म तथा उपादान सरलता से मिल जाते हैं। यह 'मुस्तफ़ाइलुन–मफ़ऊलात' की दो बार आवृत्ति से बनी है।

2. **बहरे मुक्ताज़िब**–यह बहर 'मुंसरेह' बहर से निर्मित की गई है। यह 'मफ़ाऊलात–मुस्तफ़ाइलुन' की दो बार आवृत्ति से बनी है।

3. **बहरे मुजास**–यह खफ़ीफ़ नामक बहर से निर्मित की गई है। इसमें 'मुस्तफ़ाइलुन–फ़ाइलातुन' की दो बार आवृत्ति होती है।

4. **बहरे मुजारअ**–यह बहर मुंसरेह और हजज नामक बहरों से मिलती–जुलती हैं। इसमें 'मुफ़ाईलुन–फाइलातुन' की दो बार आवृत्ति होती है।

5. **बहरे बतीस**–इस बहर में आरंभिक मात्राएँ खींच कर पढ़ी जाती हैं। इस बहर पर रचना करने के लिए 'मुस्तफ़ाइलुन–फाइतुन' की दो बार आवृत्ति करनी होती है।

6. **बहरे सरीअ**–यह बहर भी शीघ्रता से पढ़ी जाती है। और जल्दी पढ़ी जाने के कारण सरीअ कहलाई। यह बहर रमल बहर से मिलती–जुलती है। यह 'मुस्तफ़ाइलुन–मुस्तफ़ाइलुन–मफ़उलात' की आवृत्ति से बनती है।

7. **बहरे मुशाकिल**–यह बहर क़रीब नामक बहर से काफी मिलती–जुलती है। यह 'फाइलातुन–मफ़ाईलातुन–मफ़ईलुन' की आवृत्ति से बनी है।

8. **बहरे जदीद**–ज़दीद का शाब्दिक अर्थ है नूतन या नवीन। कुछ लोगों के अनुसार इसका निर्माण खलील–बिन–अहमद के पश्चात हुआ। कुछ विद्वानों का यह भी कथन है कि इस बहर का निर्माण खलील ने सबसे अंत में किया। कुछ

भी हो अपने समय की सबसे नवीन बहर होने के कारण यह ज़दीद कहलाई। यह 'फ़ाइलातुन–फ़ाइलातुन–मुस्तफ़ाइलुन' की आवृत्ति से बनी है।

9. **बहरे मदीद**–इसकी उत्पत्ति तवील नामक बहर से हुई है। फ़ारसी और उर्दू की अपेक्षा अरबी में इसका अधिक प्रयोग हुआ है। यह 'फ़ाइलातुन–फ़ाईलुन' की आवृत्ति से बनी है।

10. **बहरे करीब**–यह बहर मुजारअ तथा हजज नामक बहर के काफी करीब है। इसलिए इसे करीब कहा गया है। यह 'मफ़ाईलुन–मफ़ाईलुन–फ़ाइलातुन' की आवृत्ति से बनी है।

11. **बहरे तवील**–अपने समय की सबसे लंबी बहर होने के कारण इसका नाम तवील कहलाया। इसमें 'फ़उलुन–मफ़ाईलुन' की दो बार आवृत्ति होती है।

12. **बहरे खफ़ीफ़**–इस बहर पर आधारित, पंक्तियाँ प्रवाह की दृष्टि से उत्तम होती हैं। यह 'फ़ाइलातुन–मुस्तफ़ाइलुन– फ़ाइलातुन की आवृत्ति से बनती है।

इन बहरों में कुछ ऐसी बहरें भी हैं, जो अरबी–फ़ारसी में भी प्रचलित हैं और हिंदी में भी। जैसेः

1. **बहरे रमल**–जिसे हिंदी में हरिगीतिका छंद कहते हैं।

2. **बहरे मुतदारिक**–जिसे हिंदी में त्रिभंगा छंद कहते हैं।

3. **बहरे मुत्कारिब**–जिसे भुजंग प्रयात छंद कहते हैं।

4. **बहरे सरीअ**–जिसे हिंदी में चौपाई छंद कहते हैं।''[31]

''उर्दू के छंदशास्त्र यानी बहरों की जानकारी ज़रूरी है बेशक, यह मुश्किल कार्य है। लेकिन बहर की पहचान के बिना कोई ग़ज़लकार किस प्रकार ग़ज़ल कहेगा? उर्दू में उस्ताद–शार्गिद परंपरा थी। उस्ताद शायर उर्दू ग़ज़ल की बहरों के ज्ञाता होते थे।

उनके मुकाबले नए शायरों को बहरों का ज्ञान कम होता था। वो मुशायरे में पढ़ने से पूर्व ग़ज़ल उस्ताद को ज़रूर सुनाते। उस्ताद शायर ग़ज़ल सुनते और फिर उनका शीन–काफ़ दुरुस्त करते। इसे इस्लाह कहा जाता था। शार्गिद उस्ताद शायर को ग़ज़ल सुना लेने के बाद आश्वस्त हो जाता था कि ग़ज़ल मुकम्मल है। कमज़ोर या बेवजनी ग़ज़ल पढ़ने वाला शायर सम्मान का हकदार नहीं बनता था। लेकिन अच्छी ग़ज़ल पढ़ने वाले शायर से पूछा जाता था कि उसका उस्ताद कौन है? यानी 'मुरस्सा' ग़ज़ल के पीछे उस्ताद का फ़न या कहें 'हुनर' शामिल होता था।''[32] इसके विपरीत हिंदी भाषा के ग़ज़लकारों में उस्ताद–शार्गिद परंपरा का चलन नहीं है। ''ग़ज़ल संबंधी इस्लाह की सम्भावनाएँ भी नहीं है। हिंदी में उस्ताद–शार्गिद परंपरा को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा गया। उस्ताद नहीं तो इस्लाह कैसी? हिंदी भाषी ग़ज़लकार एक तो ग़ज़ल की बहरों से परिचित नहीं। दूसरा उन्हें यह भी मालूम नहीं होता कि वे ग़ज़ले कह रहे हैं या लिख रहे हैं, शास्त्रीय दृष्टि से ठीक भी है या नहीं? ग़ज़ल की कुछ बहरों में इतना मामूली अंतर है कि हिंदी भाषी ग़ज़लकार (अधिकांश) एक बहर से दूसरी बहर में चले जाते हैं। उन्हें इस बात का इल्म नहीं होता कि जो ग़ज़ल एक बहर में होनी चाहिए थी, वो एक से अधिक बहरों में है।''[33] इसका कारण हिंदी भाषा के ग़ज़लकारों में उस्ताद–शार्गिद परंपरा का न होना है।

ग़ज़ल के बहर संबंधी ज्ञान को हासिल करना मुश्किल कार्य है इसे हासिल करने के लिए सतत प्रयास की आवश्कयता है। सतत प्रयास से बहर संबंधी समझ प्राप्त की जा सकती है। इसके लिए उस्ताद–शार्गिद की परंपरा का अपना महत्त्व है। अगर बहर संबंधी जानकारी नहीं होगी तो शायर इन बहरों में उलझ कर ग़ज़ल कह नहीं पाएगा इसके लिए आवश्यक है कि मस्तिष्क इसका अभ्यस्त हो जाए ताकि ग़ज़ल बेबहर न हो पाए।

बहर के साथ–साथ ग़ज़ल में शब्दों के प्रयोग पर भी ध्यान देना ज़रूरी है। क्योंकि ग़ज़ल के कम शब्दों में अधिक और गूढ़ बात कही जाती है। इसमें सांकेतिक

भाषा का प्रयोग किया जाता है। इसमें लहज़ा, तग़ज़्ज़ुल, मिज़ाज, तासीर और शेरियत का भी ख़याल रखा जाता है ताकि ग़ज़ल की लोच और नाँद बनी रहे उसका मिज़ाज बना रहे।

नीचे कुछ बहरों को शेरो के माध्यम से तख़्ती करके समझने का प्रयास किया गया है।

छंद : बहरे–मुतकारिब

यह बहर अपेक्षाकृत आसान बहर है और अतिप्रचलित बहर भी। उदाहरण देखें:

बनाकर फ़कीरों का हम भेस ग़ालिब
तमाशा–ए–अहले करम देखते हैं

फ़ऊलुन फ़ऊलुन फ़ऊलुन फ़ऊलुन
1 2 2 1 2 2 1 2 2 1 2 2
ब ना कर फ़ की रों का हम भे स गा लिब
1 2 2 1 2 2 1 2 2 1 2 2
त मा शा ए अह ले क रम दे ख ते हैं

छंद : बहर–रमल मुसद्दस

मत कहो आकाश में कुहरा घना है
यह किसी की व्यक्तिगत आलोचना है

फाइलातुन फाइलातुन फाइलातुन
2 1 2 2 2 1 2 2 2 1 2 2
मत क हो आ का श में कुह रा घ ना है
2 1 2 2 2 1 2 2 2 1 2 2
यह किसी की व्य व्य क्ति गत आ लो च ना है

छंद : बहर–रमल मुसद्दस महज़ूफ़

कोई दिन गर ज़िंदगानी और है
हमने अपने दिल में ठानी और है
फाइलातुन फाइलातुन फाइलुन
2 1 2 2 2 1 2 2 2 1 2
को ई दिन गर ज़िं द गा नी औ र है
2 1 2 2 2 1 2 2 2 1 2
हम ने अप ने दिल में ठा नी औ र है

उपरोक्त उदाहरण प्रचलित बहरों के हैं। जिनमें अधिकतर शेर या ग़ज़ल लिखे कहे जाते हैं।

शेर–शेर का अर्थ है जानी हुई चीज़ यानी जानना, पता लगाना। दूसरे यह केश या बाल के अर्थ में भी लिया जाता है। ग़ज़ल के संदर्भ में यदि बात करें तो शेर ग़ज़ल की नींव होता है जिस पर ग़ज़ल की इमारत खड़ी होती है। शेर दो पंक्तियों से मिलकर बनता है। जिसमें ग़ज़लकार अपने विचार ढाल कर प्रस्तुत करता है। ग़ज़ल का प्रत्येक शेर अपने में स्वतंत्र भाव या अर्थ को व्यक्त करने की सामर्थ्य रखता है। किसी ग़ज़ल के भाव–सौंदर्य के लिए उसके शेरों का प्रभावशाली होना अत्यंत आवश्यक है। उदाहरणः

अपने दिल का हाल यारों, हम किसी से क्या कहें
कोई भी ऐसा नहीं मिलता जिसे अपना कहें[34]

मिसरा–किसी शेर के एक चरण या एक पंक्ति को उर्दू में मिसरा कहा जाता है। पहली पंक्ति को मिसरा–ऊला तथा नीचे की पंक्ति को मिसरा–सानी कहते हैं। दो मिसरे मिलकर एक शेर बनाते हैं। शेर के दूसरे मिसरे में रदीफ एवं क़ाफ़िए का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणः

ख़ुदा नहीं, न सही, आदमी का ख़्वाब सही, मिसरा–ऊला
कोई हसीन नज़ारा तो है नज़र के लिए[35] मिसरा–सानी

मतला–ग़ज़ल के पहले शेर को 'मतला' कहते हैं, जिसका अर्थ होता है उदय। मतले में दोनों मिसरों की तुक समान होती है। मतले को ग़ज़ल की इब्तिदा अथवा आरंभ भी कहा जाता है। कई बार ग़ज़ल में दो मतले होते हैं। दूसरे मतले को मतलाए सानी (दूसरा) मतला कहते, इसे हुस्से मतला भी कहा जाता है। इसकी दोनों पंक्तियों में एक ही रदीफ और क़ाफ़िया होता है। जबकि अन्य शेरों की अंतिम पंक्ति में ही यह विशेषता पाई जाती है। उदाहरणः

किस का हम ने किया नुक़सान कोई कह तो दे
भूल के भी किया अपमान कोई कह तो दे[36]

मक़ता–ग़ज़ल के आख़िरी शेर को मक़ता कहा जाता है। अरबी में मक़ते का शाब्दिक अर्थ होता है, कटा हुआ या तराशा हुआ। यह नाम इसलिए पड़ा कि ग़ज़लकार इस शेर को इस तरह से तराशता है कि इसमें उसका उपनाम नगीने की तरह जड़ जाए यानी इसमें शायर अपना तख़्ल्लुस अथवा उपनाम का प्रयोग करता है। यह ग़ज़ल का अंतिम शेर होता है। इसलिए इसमें ग़ज़लकार अपने उपनाम के प्रयोग द्वारा ग़ज़ल पर अपनी छाप अंकित करता है। ग़ज़ल में यह इस बात का प्रतीक है कि यहाँ ग़ज़ल समाप्त होती है।

गौरतलब है कि हिंदी ग़ज़ल में मक़ते का प्रयोग बहुत कम होता है अथवा नहीं होता है। उदाहरणः

'शमशेर' और कुछ नहीं दुनिया जहान में
इक दिल है, ढूँढ़ता हूँ उसी बेख़बर को मैं[37]

तथा

दुख से अधीर लोग मिले मुझे को त्रिलोचन
औरों का दुख भी समझे व' प्राणी वहाँ न था[38]

काफ़िया–क़ाफ़िया शब्द 'फ़कू' से बना है। जिसका अर्थ है, बार–बार, पै–दर–पै, फिर–फिर। यानी पीछे–पीछे चलना, बार–बार चलने वाला या क़दम से क़दम मिलाकर चलने वाला। इसका पारिभाषिक अर्थ हुआ–वह अक्षर या अक्षर समूह जो बार–बार शेरों में आकर उसको ग़ज़ल के सूत्र में बाँधता है। ज़ाहिर है क़ाफ़िया रदीफ़ के पीछे–पीछे चलता है। रदीफ़ वहीं रहता है, लेकिन काफ़िया बदलता रहता है। क़ाफ़िये का बदलते रहना ही शेर का सौन्दर्य है। क़ाफ़िए का प्रयोग तुक मिलाने के लिए किया जाता है। उदाहरणः

जाने किस–किसका ख़याल आया है,
इस समंदर में उबाल आया है।

एक बच्चा था हवा का झोंका
साफ़ पानी को खँगाल आया है।

एक ढेला तो वहीं अटका था,
एक तू और उछाल आया है।[39]

उपर्युक्त ग़ज़ल में ख़याल, उबाल, खँगाल, उछाल का प्रयोग काफ़िले के रूप में हुआ है।

रदीफ़–रदीफ़, काफ़िये के बाद आने वाले उस शब्द समूह को कहते हैं, जो बार–बार आते हैं। यानी क़ाफ़िये के बाद जो भी अक्षर या अक्षर–समूह, शब्द या शब्द–समूह स्थायी रूप से आता है, उसे रदीफ़ कहते हैं। यह क़ाफ़िये के बाद आता है और अपने स्थान पर स्थिर रहता है। ग़ज़ल के पहले शेर की दोनों पंक्तियों तथा बाद के प्रत्येक शेर की अंतिम पंक्ति के अंत में जिस शब्द–समूह की आवृत्ति पाई जाती है। उसे ग़ज़ल का रदीफ़ कहते हैं। उदाहरणः

कैसे मंज़र सामने आने लगे हैं,
गाते–गाते लोग चिल्लाने लगे हैं।

अब तो इस तालाब का पानी बदल दो,
ये कँवल के फूल कुम्हलाने लगे हैं।[40]

उपर्युक्त ग़ज़ल में 'लगे हैं' का प्रयोग रदीफ़ के रूप में किया गया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यह सभी ग़ज़ल रूपी शरीर के सारे अंग है। जिससे मिलकर ग़ज़ल स्वरूप एवं आकार ग्रहण करती है।

हिंदी ग़ज़ल संबंधी बहरें और दृष्टियाँ

ग़ज़ल हिंदी की अपनी विधा नहीं है। फ़ारसी–उर्दू ग़ज़लों के प्रभाव स्वरूप इसका आगमन हिंदी में हुआ। हिंदी में ग़ज़लों का उद्‌भव उर्दू ग़ज़लों के कारण हुआ उर्दू में ग़ज़ल फ़ारसी से आई और फ़ारसी में अरबी से। फ़ारसी में ग़ज़ल विधा ने बहुत लोकप्रियता प्राप्त की। तत्पश्चात उर्दू में ग़ज़लें कही गईं और उर्दू ग़ज़लकारों ने इसे सजा–सवाँरकर लोकप्रियता के शिखर पर पहुँचा दिया।

उर्दू ग़ज़ल की बढ़ती लोकप्रियता के कारण हिंदी कवियों ने भी इस विधा को अपनाया। प्रारंभ में हिंदी कवियों ने इस विधा को बुनियादी सरोकार के रूप में नहीं साधा। उन्होंने केवल इस विधा में हाथ आज़माने के लिए ही रचना की। और उर्दू ग़ज़ल की ज़मीन पर खड़े होकर ही ग़ज़लें लिखीं। हिंदी में ग़ज़ल उर्दू से आई इसलिए उस पर उर्दू ग़ज़लों का प्रभाव स्पष्ट दिखता है। ग़ज़ल प्रेम, ऋंगार, मिलन, विरह आदि भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम रही है। लेकिन धीरे–धीरे इसने अपने को ज़िंदगी के यथार्थ से जोड़ा। हिंदी ग़ज़ल कथ्य और शिल्प में उर्दू ग़ज़ल से

प्रभावित तो है परंतु इसमें अपने लिए धीरे–धीरे अलग ज़मीन, नवीन भावभूमि और नवीन तेवर तैयार कर लिए हैं।

हिंदी ग़ज़ल की अपनी परंपरा रही है। भारतेंदु से लेकर, प्रसाद, निराला, शमशेर, त्रिलोचन दुष्यंत और आज के समकालीन, ग़ज़लकारों तक, जिन्होंने इसे नए संदर्भों से जोड़ा और नए मायने प्रदान किए। हिंदी ग़ज़ल समकालीन सामाजिक, आर्थिक सांस्कृतिक और राजनीतिक चेतना से संपन्न ग़ज़लें हैं। हिंदी ग़ज़ल ने कथ्य की दृष्टि से देखा जाए तो आधुनिक भावबोध सम–सामयिक संघर्ष चेतना और आम व्यक्ति के संघर्ष, उसकी पीड़ा, उसकी संवेदनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान की है। हिंदी ग़ज़ल की लोकप्रियता का कारण उसका आम आदमी से जुड़ना ही है।

इसके बावजूद हिंदी ग़ज़ल को लेकर समय–समय पर अलग–अलग बहसें आती रही हैं। उसे देखने की अलग–अलग दृष्टियाँ आती रही हैं। हिंदी ग़ज़ल की अलग पहचान को लेकर हों या उसकी उत्पत्ति को लेकर, उसकी भाषा को लेकर हों या उसके शिल्प को लेकर, समय–समय पर यह बहसें एवं दृष्टियाँ व्यक्त होती रही हैं।

''ग़ज़ल निस्संदेह विवादास्पद विधा है। अपनी संरचना, लहज़े और रूप में। वली दकनी के समय से आज की हिंदी ग़ज़ल तक विवाद जारी है। उर्दू में विवाद के रहते ग़ज़ल ने कई पड़ाव तय किए हैं। यूँ भी कह सकते हैं कि ग़ज़ल के विरोध से ग़ज़ल ने शक्ति अर्जित की। ग़ज़ल न सिर्फ लचीली हुई बल्कि समय सापेक्ष भी। ग़ज़ल के प्रतिवाद ने ग़ज़ल को प्रयोगवादी होने की ताब दी।''[41]

यह बात हिंदी ग़ज़ल पर भी लागू होती है। हिंदी ग़ज़ल संबंधी जितनी बहसें या विवाद उत्पन्न होते हैं, हिंदी ग़ज़ल ने उनसे शक्ति ही अर्जित की है और अपने को दुरुस्त कर आगे बढ़ रही है, विकास कर रही है। इसने अपनी कमियों को दूर किया है। इसके शिल्पगत रूप में और विषयवस्तु के रूप में सुधार हुआ है। हिंदी ग़ज़ल निरंतर विकासशील है और समय सापेक्ष भी हुई है।

हिंदी ग़ज़ल को लेकर जो पहली और बड़ी बहस खड़ी होती है वह उसकी उत्पत्ति को लेकर है। हिंदी ग़ज़ल की उत्पत्ति कब हुई? इसके जन्मदाता ग़ज़लकार कौन हैं? आदि। यह बहस बेशक हिंदी की अपनी ज़मीन की तलाश का हिस्सा हो परंतु कहीं–कहीं यह बहस इस स्तर पर पहुँच जाती है कि इसमें हिंदी ग़ज़ल को उर्दू भाषा एवं ग़ज़ल की परंपरा से बिलकुल काट कर देखने का प्रयत्न किया जाने लगता है जो केवल अलगाववादी सोच का नतीजा है। यह पड़ताल करने में कोई बुराई नहीं है कि जिस विधा में लिख रहे हैं उसका चलन कब से प्रारंभ हुआ, परंतु यदि इसके पीछे यह मंशा काम कर रही हो कि उर्दू की पूरी परंपरा को, उसकी पूरी रवायत को नकार कर यह सिद्ध किया जाए कि ग़ज़ल हिंदी में उर्दू के जन्म से भी पुरानी है और उसकी अपनी अलग परंपरा है, कि उसका उर्दू से कोई सरोकार नहीं हैं, तो यह सही नहीं है। इस तरह हम अपने भाषाई संस्कार को नकारेंगे साथ ही दोनों भाषाओं की जो एक दूसरे की देन है, उनका जो आपकी रिश्ता या संबंध है उसे भी ठेस पहुँचाएँगे।

हिंदी ग़ज़ल की परंपरा की तलाश करते हुए इसकी उत्पत्ति के संबंध में भिन्न–भिन्न मत सामने आते रहे हैं। कुछ विद्वान ख़ुसरो को तो कुछ विद्वान कबीर को पहला ग़ज़लकार मानते हैं। अमीर ख़ुसरो से हिंदी ग़ज़ल विधा का उद्‌भव मानने वाले ग़ज़लकारों की सूची काफी लम्बी है। गोपालदास सक्सेना 'नीरज' कहते हैं, ''मैं अमीर खुसरो से ही हिंदी ग़ज़लों का उद्‌भव मानता हूँ क्योंकि अमीर खुसरो सिर्फ उर्दू–फ़ारसी के ही कवि नहीं, वे हिंदी के भी हैं।''[42] डॉ. हनुमंत नायडू के अनुसार', ''अमीर खुसरो के जीवन काल में हिंदी ग़ज़ल का उद्‌भव हुआ।''[43] अशोक 'अंजुम' का कहना है, ''चूँकि हिंदी में अमीर खुसरो से ही ग़ज़ल का अवतरण दिखाई पड़ता है अतएव आपको हिंदी ग़ज़ल का प्रथम ग़ज़लकार माना जा सकता है।''[44]

इस प्रकार अमीर खुसरो को हिंदी का पहला ग़ज़लकार और उनसे ही हिंदी ग़ज़ल का सूत्रपात मानने वालों में भवानी शंकर, ज़हीर कुरैशी, विजय कुमार सिंहल,

दिनेश शुक्ल, राजेंद्र तिवारी आदि विद्वानों का नाम लिया जा सकता है जिनके अनुसार अमीर खुसरो ही पहले हिंदी के ग़ज़लगो हैं।

अमीर खुसरो एक बहुमुखी प्रतिभा संपन्न विद्वान थे। ये फ़ारसी के बहुत बड़े प्रयोगधर्मी शायर थे, साथ ही यह संगीत के भी बहुत बड़े मर्मज्ञ थे। इन्होंने वीणा से सितार का आविष्कार किया। इन्होंने तबला, सितार वाद्ययंत्रों के अतिरिक्त कव्वाली का भी सूत्रपात किया। इन्होंने फ़ारसी मिश्रित कविताएँ लिखीं। इन्होंने गीत, पहेलियाँ, मुकरियाँ और दो सुखन दोहे भी लिखे। और कोई–कोई शेर तो ठेठ हिंदी में भी लिखा। इन्होंने ऐसी मिली–जुली भाषा का सूत्रपात किया जिसे हिंदू–मुस्लिम सरलता से अपना सकें। जिस मेलजोल की भाषा का खुसरो ने सूत्रपात किया था, उसका उन्होंने स्वयं नामकरण 'हिंदी' या 'हिंदवी' किया। उन्होंने इस हिंदवी या खड़ी बोली में कुछ रचनाएँ भी लिखीं परंतु उनका शेष दीवान 'गुर्रतुल कमाल' फ़ारसी में है। उन्होंने अपनी हिंदी रचनाओं को संकलित नहीं किया था। वह अपनी हिंदी रचनाएँ लिखकर बाँट देते थे।

अमीर खुसरो ने फ़ारसी और हिंदी के मेल से एक ग़ज़ल लिखी जिसमें एक पंक्ति हिंदी की और एक पंक्ति फ़ारसी की है। इस तरह पूरी ग़ज़ल का ताना–बाना इन दोनों भाषाओं के मेल से ही बना हुआ है, जैसेः

ज़हाले मसकीं मकुन तग़ाफुल दराये नैना बनाये बतियाँ।
किताबे हिजराँ नदारम ऐजाँ! न लेबो काहे लगाय छतियाँ।।

शबाने हिजराँ दराज़ चूँ जुल्फ़, बरोज़े वस्तत चूँ उम्र कोताश।
सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ[45]

यह ग़ज़ल हिंदी और फ़ारसी के मिश्रण से बनी एक अनूठी ग़ज़ल है इसी के आधार पर हिंदी के विद्वान इसे हिंदी ग़ज़ल परंपरा से जोड़कर देखते हैं, परंतु इस ग़ज़ल को हिंदी ग़ज़ल परंपरा से जोड़कर देखना सही नहीं होगा। यह ग़ज़ल अमीर

खुसरो ने एक प्रयोग के तौर पर लिखी। इसका पूरा ताना–बाना फ़ारसी ग़ज़ल पर ही आधारित है, दूसरे यह हिंदी ग़ज़ल लेखन की कोई परंपरा पैदा नहीं करती जिससे हिंदी में ग़ज़ल विधा का चलन होता। दरअसल यह वह समय था जब खड़ी बोली स्वयं अपने पैरों पर खड़ी नहीं थी। इसलिए अमीर खुसरो को हिंदी ग़ज़ल के प्रणेता के रूप में देखना न्यायसंगत नहीं होगा। इस संदर्भ में डॉ. बहादुर मिश्र कहते हैं, ''कुछ लोग हिंदी ग़ज़ल को अमीर खुसरो से जोड़ते हैं परंतु सच तो यह है कि अमीर खुसरो की ग़ज़ल हिंदी में नहीं फ़ारसी में है।''[46]

अनेक विद्वान कबीर (1398–1518) को हिंदी का सर्वप्रथम ग़ज़लकार मानते हैं। 'हिस्ट्री ऑफ़ पर्शियन लैंग्वेज एंड लिटरेचर एट द मुग़ल कोर्ट' में एम.ए. गनी ने भी कबीर को ही पहला ग़ज़लकार माना है। महेश अवध के अनुसार, ''प्रयोग के तौर पर लिखी ग़ज़ल को मान्यता दें तो हिंदी की पहली ग़ज़ल कबीरदास ने लिखी है।''[47]

ये विद्वान हिंदी ग़ज़ल परंपरा को कबीर से जोड़कर देखते हैं। कबीर भक्तिकाल के ज्ञानमार्गी क्रांतिकारी संत कवि थे। वह अपनी रचनाओं के माध्यम से भक्ति और प्रेम का संदेश देते थे और समाज में व्याप्त बुराइयों पर कुठाराघात करते थे। उनकी भाषा में ओज के साथ ही संत कवियों जैसा फक्कड़पन और अक्खड़पन मिलता है। इस प्रकार के संत कवि का ग़ज़ल जैसे कलावादी रूप को साधना ग़ज़ल विधा के मिज़ाज और स्वयं कबीर के मिज़ाज के अनुरूप नहीं लगता। उन्होंने एक दो ग़ज़लें अपनी फ़कीरी मौज में लिखीं परंतु वो ग़ज़ल और भजन का मिला–जुला रूप लगती हैं:

हमन है इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या
रहें आज़ाद या जग से हमन दुनिया से यारी क्या

जो बिछड़े हैं दियारे से भटकते दर–ब–दर फिरते
हमारा प्यार है हममे, हमन को इंतज़ारी क्या[48]

इस ग़ज़ल में नाँद है, लय है मक़ते में कबीर का नाम है यानी यह ग़ज़ल विधा के अनुरूप ही लिखी गई है। परंतु यह एक संत कवि की भक्ति रचना ही अधिक प्रतीत होती है। इसमें उनका फक्कड़पन ही दिखाई पड़ता है।

कबीर भी अपने बाद हिंदी की कोई सुनियोजित परंपरा को खड़ा नहीं करते। इनके बाद जहाँगीर के समकालीन कवि 'प्यारेलाल शोकी' ने और फिर बाद में भारतेंदु के पिता गिरधर दास ने ही हिंदी में कुछ ग़ज़लें लिखीं। इस दौरान हिंदी ग़ज़ल कोई परंपरा का रूप नहीं ले पाती।

हिंदी ग़ज़ल की परंपरा को अमीर खुसरो या कबीर से जोड़कर देखना उचित प्रतीत नहीं होता। हालाँकि उन्होंने एक दो ग़ज़लों की रचना की है। परन्तु वह अपने बाद किसी परंपरा का निर्वाह नहीं करती, न ही हिंदी में उनके बाद ग़ज़ल लेखन का चलन शुरू होता है। अमीर खुसरो और कबीर के बाद भारतेंदु तक हिंदी ग़ज़ल की कोई परंपरा दिखाई नहीं पड़ती। दरअसल यह हिंदी ग़ज़ल को उर्दू ग़ज़ल की परंपरा से अलग करके देखने का ही परिणाम है कि विभिन्न ग़ज़लकार इसे उर्दू भाषा से भी पहले का सिद्ध करने के प्रयास में लगे रहे जबकि हिंदी ग़ज़ल उर्दू ग़ज़लों के प्रभाव से ही लिखी गई और अपने प्रारंभिक दौर में तो यह पूर्णतः उर्दू ग़ज़ल से प्रभावित थी एवं उर्दू की ज़मीन पर खड़े होकर ही हिंदी ग़ज़लें लिखी गईं।

दरअसल हिंदी ग़ज़ल परंपरा बहुत बाद की है। इसका विधिवत रूप से सूत्रपात भारतेंदु से आधुनिक काल में होता है। तथा यह प्रसाद, निराला, शमशेर, त्रिलोचन से होती हुई अपने विकास की गति या लोकप्रियता दुष्यंत कुमार से हासिल करती है।

रामकुमार कृषक के अनुसार, ''हिंदी में ग़ज़ल लेखन की शुरुआत विधिवत तौर पर तो भारतेंदु युग में हुई, भारतेंदु ने स्वयं अनेक ग़ज़लें लिखीं और उनके कुछ समकालीनों ने भी।''[49]

देवेन्द्र शर्मा 'इंद्र' कहते है कि 'मैं हिंदी ग़ज़ल का उद्‌भव भारतेंदु युग से मानता हूँ।''[50] डॉ. अनंत राम मिश्र 'अनंत' कहते हैं, ''मेरी दृष्टि में तो यह श्रेय भारतेन्दु हरिश्चंद्र को मिलना चाहिए।''[51]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेंदु हरिश्चंद्र से हिंदी ग़ज़ल की विधिवत शुरुआत मानने वाले ग़ज़लकार भी हैं, जोकि भारतेंदु से हिंदी ग़ज़ल परंपरा का प्रारंभ मानते हैं। सही मायने में भारतेंदु ही हिंदी ग़ज़ल परंपरा की शुरुआत करते हैं और उनके बाद हिंदी ग़ज़ल को कवियों ने एक विधा के तौर पर गंभीरता से अपनाया और उसके विकास में योगदान दिया।

दरअसल यह पूरी बहस एक दूसरी बहस को भी जन्म देती है कि हिंदी में ग़ज़लों का उद्‌भव उर्दू ग़ज़लों के कारण हुआ या फिर उर्दू ग़ज़लों से पहले हिंदी ग़ज़लें लिखी गईं। यह सवाल परंपरा का सवाल ही है और यह इस बात से भी जुड़ता है कि हिंदी ग़ज़लों पर उर्दू ग़ज़लों का प्रभाव है या नहीं अथवा हिंदी ग़ज़ल के पीछे उर्दू की परंपरा है या नहीं।

ज़हीर कुरैशी कहते हैं, ''चूँकि मैं सबसे पहला ग़ज़लकार हज़रत अमीर ख़ुसरो को मानता हूँ, अतः मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि हिंदी में ग़ज़लों का उद्‌भव उर्दू ग़ज़लों के कारण नहीं हुआ है।''[52] डॉ. हनुमंत नायडू का मानना है कि ''अमीर ख़ुसरो ने ही हिंदी की पहली ग़ज़ल लिखी थी, अतः उर्दू ग़ज़ल के बहुत पहले ही हिंदी ग़ज़ल लिखी जा चुकी थी।''[53] दीनेश शुक्ल का मानना है, ''हिंदी ने ग़ज़ल की विधा उर्दू से नहीं, सीधे फ़ारसी से ली है और वह भी उर्दू के जन्म से बहुत पहले।''[54]

इस प्रकार हम देखते हैं कि यह सारे विचार हिंदी ग़ज़लों को उर्दू ग़ज़ल की सुदीर्घ परंपरा से काटकर देखने का अकारण ही प्रयत्न भर हैं। यदि अमीर ख़ुसरो हिंदी के पहले ग़ज़लकार हैं और हिंदी ने उर्दू से परंपरा स्वरूप कुछ भी ग्रहण नहीं किया तो अमीर ख़ुसरो और कबीर की एक दो ग़ज़लों के अलावा हिंदी में चार–पाँच

सौ वर्षों तक ग़ज़ल लेखन का सूखा क्यों पड़ा रहा? शायद इसका जवाब भी यह लोग गढ़ लेंगे। परंतु सच्चाई यही है कि हिंदी ग़ज़ल लेखन में उर्दू ग़ज़ल की परंपरा और उसकी लोकप्रियता की भूमिका रही है।

यह बात कमलेश्वर के इस कथन से और भी स्पष्ट हो जाती है, ''यूँ देखें तो साहित्य की हर विधा का जन्म सांस्कृतिक, भौगोलिक और मनुष्य के भीतर छुपी रचनात्मक शक्ति के माध्यम से होता है।''[55]

इस तरह हम हिंदी ग़ज़ल को भी उर्दू ग़ज़ल की परंपरा से काट कर नहीं देख सकते। इसी संदर्भ में त्रिलोचन शास्त्री कहते हैं, ''हिंदी में उर्दू ग़ज़ल के असर से ही ग़ज़ल लिखना चालू हुआ।''[56]

चंद्रसेन विराट इसी बात को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं, 'निश्चित ही उर्दू की ग़ज़ल के प्रभाव के अंतर्गत कालांतर में हिंदी में इस छंद विधान को अपनाकर रचनाएँ की गई हैं।''[57] बी.के जौहरी का मानना है, ''हिंदी में ग़ज़लों का उद्‌भव उर्दू ग़ज़लों के प्रभाव के ही कारण हुआ है और हिंदी में ग़ज़लें उर्दू ग़ज़लों के बाद ही लिखी गई हैं।''[58]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिंदी में छुट–पुट रूप में पहले ग़ज़ल मिलती हैं। परंतु विधिवत रूप से ग़ज़ल लेखन उर्दू ग़ज़ल के प्रभाव स्वरूप ही हिंदी में शुरू हुआ। हिंदी ग़ज़ल के पीछे उर्दू ग़ज़ल की एक सुदीर्घ परंपरा है, जिसे हिंदी ग़ज़लकारों को स्वीकार कर सृजनात्मक रूप से अपनाकर आगे बढ़ना होगा।

हिंदी ग़ज़ल में एक बहस इसके नामकरण को लेकर भी नज़र आती है। कुछ विचारक हिंदी ग़ज़ल को एक नया या विशिष्ट नाम देने की आवश्यकता बताते हैं। दरअसल यह सवाल भी हिंदी ग़ज़ल की अपनी अलग पहचान बनाने के संदर्भ से ही जुड़ा हुआ है। हिंदी ग़ज़ल के विभिन्न विद्वानों ने इसे अलग–अलग नामों से संबोधित करने का प्रयास किया है। चंद्रसेन विराट और मनोज तोमर ने इसे 'मुक्तिका' की संज्ञा से अंकित किया है। सूर्यभानु गुप्त और अशोक 'अंजुम' हिंदी ग़ज़ल को 'नई ग़ज़ल'

कहने के पक्ष में हैं। नीरज ने हिंदी ग़ज़ल को 'गीतिका' तथा मोहन अवस्थी ने 'अनुगीत' की संज्ञा से अभिहीत किया है। जबकि बी.के. जौहरी ग़ज़ल को सिर्फ 'ग़ज़ल' कहने के पक्ष में हैं।

कई मायनों में यह बहस अनावश्यक–सी प्रतीत होती है। हिंदी ग़ज़ल को 'मुक्तिका', 'नई ग़ज़ल', 'गीतिका', 'अनुगीत' इत्यादि कहने से उसमें कुछ नया नहीं जुड़ता। साथ ही इस अलग नामकरण से कहीं–न–कहीं हम उसे उर्दू ग़ज़ल की परंपरा से अलग मानने लगते हैं। हालाँकि ग़ज़ल 'ग़ज़ल' ही है। ग़ज़ल लेखन के कुछ नियम होते हैं, उसका अपना मिज़ाज होता है। जो भी रचना उन नियमों से अनुशासित होकर लिखी जाएगी वह ग़ज़ल की कहलाएगी। परंतु आजकल कई भाषाओं में ग़ज़ल लिखी जा रही है, जिसके कारण हमें उसे 'हिंदी ग़ज़ल' कहने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इसमें ग़ज़ल के साथ उसकी भाषागत विशेषता जुड़ जाती है। साथ ही वह ग़ज़ल की अपनी परंपराओं से भी नहीं कटती। इसी संदर्भ में त्रिलोचन शास्त्री कहते हैं, ''पंजाबी, सिंधी और गुजराती में ग़ज़लें लिखी जा रही हैं और उन ग़ज़लों के पहले पंजाबी, सिंधी, गुजराती लगता है तो जिस ग़ज़ल में हिंदीपन हो उसे हिंदी ग़ज़ल कहना बुरा कैसे है?''[59]

अतः स्पष्ट है कि भाषा के संस्कार के हिसाब से हमें हिंदी में लिखी जाने वाली ग़ज़लों को 'हिंदी ग़ज़ल' कहने से गुरेज़ नहीं होना चाहिए।

हिंदी ग़ज़ल को लेकर एक बहस यह उत्पन्न होती है कि हिंदी और उर्दू ग़ज़लों में बुनियादी फ़र्क़ क्या है? इन दोनों भाषाओं की ग़ज़लों के बीच विभाजन रेखा क्या होगी? यह अपने आप में बड़ा और बुनियादी सवाल है। इस मुद्दे पर दोनों तरह के विचार विद्वानों की तरफ से आते हैं कुछ तो इन दोनों में बड़ा फ़र्क़ मानते हैं तथा कुछ केवल लिपि का ही अंतर मानते हैं, और कहते हैं कि इन दोनों में कोई अंतर नहीं है।

डॉ. अनंत राम मिश्र 'अनंत' के अनुसार, ''हिंदी और उर्दू की ग़ज़लों में कई अंतर हैं। अधिकांश उर्दू ग़ज़लें पारंपरिक कवि प्रौढ़ोक्तियों के आधार पर रचते हैं, जबकि हिंदी ग़ज़लों में प्रेमालाप के अतिरिक्त युग–बोध और नए बिंब तथा नवीन प्रतीक भी प्रयुक्त हो रहे हैं।''[60]

ज्ञान प्रकाश विवेक कहते हैं, ''फ़र्क़ जबान के स्तर पर और कथ्य के स्तर पर दोनों है। अलग–अलग भाषाओं का मिज़ाज भी अलग–अलग होता है।''[61] रामकुमार कृषक के अनुसार, ''हिंदी ग़ज़ल में पहला फ़र्क़ मिजाज़ का है और दूसरा भाषा–शिल्प का।''[62] राधेश्याम शुक्ल के अनुसार, ''उर्दू और हिंदी ग़ज़ल में अंतर, कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से है।''[63]

हिंदी ग़ज़ल और उर्दू ग़ज़ल में जो भिन्नता की बात उभर कर आती है, उन्हें हम दो रूपों में देख सकते हैं। एक शिल्पगत भिन्नता की बात है जो कि अधिकत्तर उभर कर आयी है। दूसरी विषयवस्तु और संवेदना की भिन्नता की है।

जहाँ तक शिल्प संबंधी दृष्टि की बात है तो कुछ विद्वानों का मानना है कि हिंदी ग़ज़ल को परंपरागत उर्दू–फ़ारसी ग़ज़ल के शिल्प विधान से बाहर आना होगा और अपना एक नया शिल्प विधान गढ़ना होगा, जिसके अनुसार हिंदी की प्रकृति के अनुरूप रचनाएँ की जा सकें। डॉ. अनंत राम मिश्र 'अनंत' का मानना है, ''हिंदी ग़ज़ल का शिल्प पूर्णतः हिंदी का हो। उर्दू बहरों से मिलते–जुलते हिंदी में अनेक छंद हैं, उनका ही प्रयोग करना चाहिए।''[64]

यदि अनंत जी की बात मानी जाए तो इससे ग़ज़ल का मूलरूप ही नष्ट हो जाएगा और ग़ज़ल ग़ज़ल नहीं रहेगी। साहित्य की प्रत्येक विधा का अपना अलग शिल्प–विधान होता है जिसके अनुरूप उस विधा की रचना की जाती है। ठीक उसी प्रकार ग़ज़ल विधा का भी अपना एक शिल्प है जिसके अनुरूप ग़ज़ल की रचना की जाती है। इसमें बहर, काफ़िया, रदीफ़, मक़ता, मतला आदि का पालन करना होता है।

तभी ग़ज़ल की रचना संभव होती है। हिंदी में ग़ज़ल के शिल्प संबंधी कई प्रयोग देखने को मिलते हैं परंतु वे प्रयोग सफल नहीं हो सके, क्योंकि ग़ज़ल लिखने के लिए उसके अपने शिल्प–विधान को अपनाना ही होता है। इसको छोड़ देने पर वह ग़ज़ल नहीं रह जाती। ग़ज़ल विधा ऊपर से देखने में जितनी सरल प्रतीत होती है, अपने रचना विधान में यह उतनी ही जटिल है।

ग़ज़ल का जो छंद विधान उर्दू में अपनाया गया है वही जिस भाषा में भी ग़ज़ल लिखी गई, उसमें भी अपनाया गया है। हमारे यहाँ हिंदी में भी अपना छंद विधान रहा है। हिंदी में कविताएँ, गीत आदि उसी के अनुरूप लिखे जाते हैं। उसी प्रकार ग़ज़ल का भी अपना शिल्प है, जिसका प्रयोग कर ग़ज़ल लिखी जानी चाहिए। हिंदी में प्रयोग स्वरूप नई–नई बहरें बनाई गईं, छोटे–बड़े मिसरों की ग़ज़लें भी चलीं, मिश्रित बहर की ग़ज़लें भी लिखी गईं। परंतु लोगों ने उन्हें स्वीकार नहीं किया। ग़ज़ल में ख़ास तरह का संगीत और रवानी होती है जिसे पाठक को सुनने की आदत–सी है इसलिए वह प्रयोगात्मक ग़ज़ल को स्वीकार नहीं करता। इसलिए शिल्प की दृष्टि से उर्दू ग़ज़ल का जो बुनियादी ढाँचा है, आरंभ से वही चला आ रहा है और अन्य भाषाओं में भी वही प्रचलित है। ग़ज़ल लेखन के लिए उसका अनुसरण जरूरी है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिंदी ग़ज़ल लेखन के लिए भी ग़ज़ल विधा के परंपरागत शिल्प विधान का अनुकरण करना अति आवश्यक है क्योंकि ग़ज़ल के शिल्प के अनुशासन में बँधकर ही हिंदी ग़ज़ल संभव हो सकती है।

दूसरा मसला हिंदी ग़ज़ल की विषयवस्तु, भाषा, बिंब, प्रतीक और मिथकों से संबंधित है। पहले भाषा की बात करें तो हर भाषा का अपना एक संस्कार होता है, उसकी अपनी संस्कृति होती है, उसके पीछे उसकी एक पूरी रिवायत होती है जिससे वह अपनी पारिभाषिक शब्दावली, मुहावरे, कहने का ढंग या अभिव्यक्ति का तरीका हासिल करती है। उर्दू ग़ज़ल के पीछे फ़ारसी की एक पूरी परंपरा है जिससे वह सृजनात्मक रूप से ऊर्जा ग्रहण करती रही है। उसने अपना एक ख़ास तरह का

लबो–लहज़ा आख़्तियार कर लिया है। इस संबंध में त्रिलोचन शास्त्री का कथन है, ''उर्दू ग़ज़लों में जो भाषा आती है वह बोलचाल का वह लहजा पकड़ती है जिसमें कविता में जीवन तत्व आता है। हिंदी में लिखने वाले बोलचाल का सौंदर्य देख ही नहीं पाते। हिंदी का वातावरण अलग है। उसको रूपायित करने के लिए वाक्यों में लोच की जरूरत है और इस लोच को लाने में बड़ी मशक्कत है।''[65]

इस प्रकार उर्दू के पास तो अपनी फ़ारसी की रिवायत के कारण एक लबो लहज़ा है। परंतु इसके विपरीत हिंदी ग़ज़ल उर्दू ग़ज़ल की परंपरा को उस रूप में नहीं अपना पाई है जिसके कारण हमें हिंदी ग़ज़ल में भाषागत रूप से दो विपरीत ढंग देखने को मिलते हैं। एक तरफ़ तो हमें हिंदी ग़ज़ल में उर्दू–फ़ारसी के शब्दों का आधिक्य देखने को मिलता है तो दूसरी तरफ पूर्णतः संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग हिंदी में देखने को मिलता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र की ग़ज़लों में हमें उर्दू–फ़ारसी शब्दों की बहुलता दिखाई देती है। जैसेः

फिर आई फ़स्ले–गुल फिर ज़ख्मदह रह रह के पकते हैं
मेरे दाग़े–जिगर पर सूरत–लाला लहकते हैं

उड़ा दूँगा 'रसा' मैं धज्जियाँ दामने–सहरा की
अबस खारे बियाबां मेरे दामन से अटकते हैं[66]

इस ग़ज़ल में उर्दू–फ़ारसी के शब्दों का आधिक्य है। दूसरी ओर हिंदी में संस्कृतिक पदावली से युक्त ग़ज़लें भी लिखी गईं। निराला की एक ग़ज़ल का उदाहरण दृष्टव्य हैः

हवा के हल्के झोंकों से प्रसूनों की महक भर दी
विहंगों ने दुमों पर स्वर मिलाकर राग गया है

प्रवासी दूर के परिचित किसी से मिलने को आतुर,
प्रकृति ने स्वर्ण–केशर से वसन जैसे रँगाया है

कलोलों के भरे, देखा सकल जलचर बराती है
नदी का सिंधु ने सवेरे से गौना कराया है[67]

इस प्रकार हिंदी ग़ज़ल में दोनों प्रकार की भाषा का प्रयोग देखने को मिलता है परंतु हिंदी ग़ज़ल को इनसे उबर कर आमफ़हम, बोलचाल की भाषा अपनानी होगी। हालाँकि समकालीन ग़ज़ल ख़ासकर दुष्यंत के बाद इन दोनों तरह के अतिवादों की स्थिति से काफ़ी हद तक उबर आयी है। और उसने अपनी एक विशिष्ट भाषा और कहने के ढंग को हासिल कर लिया है।

जहाँ तक विषयवस्तु, बिंब, प्रतीक विधान और मिथकों की बात है तो उर्दू की जो अपनी ग़ज़ल है उसमें स्वयं बहुत परिवर्तन हो चुका है। जो विषयवस्तु, प्रतीक, मिथक और बिंब विधान हम परंपरागत उर्दू ग़ज़ल में देखते थे जैसे हुस्नो–इश्क़ की बातें, बाग़, बुलबुल, गुलशन तथा फ़ारस की दुनिया से आए मिथक जैसे रूस्तम, अस्फंदयार, तूर पर्वत आदि। नई उर्दू ग़ज़ल में ये विषयवस्तु, ये सारे प्रतीक, बिंब और मिथक काफ़ी हद तक ख़त्म हो गए हैं। अब नई उर्दू ग़ज़ल में भी समकालीन युग की संवेदना और यथार्थता को प्रकट करने के लिए, नए–नए प्रतीकों बिंबों और मिथकों का प्रयोग हो रहा है। पुराने बिंब, प्रतीक, मिथक और विषयवस्तु नए ज़माने तक आते–आते बदल गए हैं। अब हिंदी और उर्दू की विषयवस्तु, प्रतीक, बिंब और मिथकों में ज़्यादा अंतर नहीं रह गया है। हिंदी ग़ज़ल पर यह आरोप लगता रहा है कि वह उर्दू के ही प्रतीक, बिंब, मिथक और विषयवस्तु को अपनाती रही है, यह उससे बाहर नहीं आ पाती किंतु उर्दू की भाँति हिंदी के भी प्रतीक, बिंब, मिथक और विषयवस्तु में परिवर्तन आया है। उसने उर्दू की परंपरागत ग़ज़लों के प्रभाव से मुक्त होकर सृजनात्मक रूप से अपनी नई ज़मीन की तलाश कर ली है। इसने अपने को समकालीन समाज की संवेदना से जोड़कर वहीं से अपने नए प्रतीक, बिंब, मिथक और विषयवस्तु को लिया है। हिंदी ग़ज़ल की विषयवस्तु, प्रतीक, बिंब यथार्थ के धरातल पर खड़े होकर सच्चाई को व्यक्त करते हैं और हिंदी ग़ज़ल को नए रूप में विकसित करते हैं।

ग़ज़ल के शिल्प से संबंधित एक बहस यह भी सामने आती है कि ग़ज़ल में संकेतों, बिंबों और प्रतीकों के माध्यम से बात कही जाती है तो यह कहाँ तक आज के समाज की विसंगतियों पर चोट कर पाएगी?[68]

बेशक ग़ज़ल का मिजाज़ ऐसा है कि इसमें किनाए से, सांकेतिकता से, प्रतीकों और बिंबों के माध्यम से बात की जाती है परंतु इसका एक–एक शेर नाविक के उस तीर की भाँति है जो देखने में छोटा लगता है परंतु उसका घाव गहरा होता है। इसका हर शेर ज़िंदगी का अक्स होता है, इसमें कम–से–कम शब्दों में जीवन की यथार्थता, उसकी जटिलता को व्यक्त किया जाता है। हिंदी ग़ज़ल ने, ख़ासकर, समकालीन हिंदी ग़ज़ल ने यह दिखा दिया है कि वह अपनी भूमिका निभा रही है। इसके व्यंग्य और कटाक्ष लंबे समय तक अपना असर रखते हैं, यह हमें दुष्यंत की ग़ज़लों से पता चलता है कि वह आज भी उतने ही प्रासंगिक बने हुए हैं। इसलिए यह कहना कि यह ज़िंदगी की हक़ीक़त, उसकी जटिलताओं को व्यक्त करने में पीछे रह जाएगी, बेबुनियादी और ग़लत होगा।

हिंदी ग़ज़ल पर पुराने समय से एक आरोप यह भी लगता रहा है कि इसके शेरों में किसी एक विचार की प्रधानता नहीं होती। इससे वैचारिक क्रम भंग होता है। एक शेर एक विचार व्यक्त करता है, तो कोई दूसरा शेर, कोई दूसरा विचार व्यक्त करता है। इसलिए विद्वानों का आपत्ति है कि असंबद्ध शेरों को एक ही ग़ज़ल में क्यों रखा जाए? मौलाना अलताफ़ हुसैन हाली ने इस असंबद्धता पर कड़ा विरोध जताते हुए कहा ''भिन्न–भिन्न विचार, अलग–अलग शेरों में व्यक्त किए जाते हैं। इसलिए ग़ज़ल में विचार लुप्त होते हैं। शेरों का अनुक्रम बढ़ गया होता है और दिमाग़ को एक शेर से दूसरे शेर तक पहुँचने में रुकावट महसूस होती है। इसमें कोई संपूर्ण अनुभव नहीं होता। विभिन्न अनुभवों के टुकड़े अवश्य होते हैं। जिनसे कल्पना लड़खड़ाती सी महसूस होती है।''[69]

फैज़ अहमद 'फैज़', इस विषय पर ग़ज़ल की वक़ालत करते हैं। वे कहते हैं, ''ग़ज़ल में जिस क़िस्म की इकाई पाई जाती है, वह विषयवस्तु या भावनाओं की इकाई नहीं होती बल्कि उस चीज़ की इकाई होती है जिसे आप 'मूड' कह सकते हैं या फिर 'कैफ़ियत'।''[70] इस प्रकार ग़ज़ल में वैचारिक विश्रृंखलता एक दोष नहीं वरन यह उसकी एक ख़ासियत है। हालाँकि वैचारिक बिखराव के कारण ग़ज़ल को गंभीर साहित्य का दर्ज़ा देने में विद्वान हिचकिचाते हैं। इसके बावजूद ग़ज़ल अत्यंत लोकप्रिय विधा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी ग़ज़ल को लेकर विद्वानों के बीच कई बहसें एवं उसे देखने के कई दृष्टिकोण हैं। यह उसके शिल्प, भाषा से लेकर संवेदना और विषय वस्तु तक देखने को मिलते है। इसमें सबसे बुनियादी सवाल उर्दू और हिंदी ग़ज़ल के बीच अंतर को लेकर है। क्योंकि आज के समय में उर्दू ग़ज़ल कथ्य, भाषा, शिल्प और संवेदना के धरातल पर हिंदी ग़ज़ल के करीब है। जैसे उर्दू की कुछ ग़ज़लों के उदाहरण से यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता हैः

हमारे घर की दीवारों पर नासिर
उदासी बाल खोले सो रही है

नासिर क़ाज़मी[71]

दिल में इक लहर सी उठी है अभी
कोई ताज़ा हवा चली है अभी

नासिर क़ाज़मी[72]

जुगनू को दिन के वक़्त पकड़ने की ज़िद करें
बच्चे हमारे अहद के चालाक हो गए

परवीन शाकिर[73]

ये ग़ज़लें हिंदी के करीब हैं। हिंदी और उर्दू ग़ज़लों में बुनियादी फ़र्क़ क्या होगा? हिंदी वालों के लिए यह बहुत बड़ी चुनौती है। उन्हें उर्दू फ़ारसी के कठिन शब्दों से भी बचना होगा तथा ऐसे हिंदी के शब्दों को लेकर आना होगा जो ग़ज़ल के मिज़ाज को ठेस न पहुँचाएँ। क्योंकि ग़ज़ल में एक ख़ास अंदाज़ से, एक ख़ास इशारे से बात करनी होती है। इशारे के माध्यम से विषयवस्तु को खोलना होता है। यह जो कथन भंगिमा है, यह हमारी भाषा पर निर्भर करती है।

इसमें भाषा को बरतने का अंदाज़ बहुत महत्वपूर्ण चीज़ है। उसमें ही वह भाव और संवेदना निहित है। जो हम ग़ज़ल के शेर में करना चाहते हैं। हिंदी और उर्दू दोनों भाषाएँ इतनी नज़दीक हैं कि इन्हें अलग–अलग करना बड़ा मुश्किल है। तकनीक वही रहेगी, शिल्प भी वही रहेगा, इसके बावजूद हिंदी ग़ज़ल को उर्दू से अलग मिजाज़ भी देना होगा। इसमें कुछ लोग उर्दू से बचने के लिए अनुवाद की भाषा में बात करने लगते हैं, जैसेः

उनको देखे से जो आ जाती है मुंह पे रौनक
वो समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है[74]

उर्दू से बचने के लिए यदि इस लहज़े में कहेंगे तोः

उनके दर्शन से जो आती है मुख पर ज्योति
वे समझते हैं कि रोगी की दशा उत्तम है[75]

तो इस प्रकार की अनुवाद की भाषा से बचना होगा। ऐसा करने पर ग़ज़ल के मिजाज़ को ठेस पहुँचेगी। हिंदी ग़ज़ल में जो तत्सम प्रधान एवं संस्कृतनिष्ठ शब्दावली है उसको दूर करके एक आमफ़हम जबान का प्रयोग ग़ज़ल के लिए करना होगा जोकि सहज हिंदी भाषा हो और ग़ज़ल के मिज़ाज के अनुकूल हो। यह एक गंभीर और चुनौतीपूर्ण कार्य है जिसे सभी अनावश्यक तरह की बहसों से बाहर आकर हिंदी ग़ज़लकारों को करना होगा।

संदर्भ सूची

[1] डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, **हिंदी ग़ज़ल उद्‌भव और विकास**, पृ.18

[2] डॉ. नरेश, **हिंदी ग़ज़लः दशा और दिशा**, पृ.13

[3] मौलाना अल्ताफ़ हुसैन हाली, **मुक़द्दमा–ए–शेर–ओ–शायरी**, पृ.97

[4] वही पृ.88

[5] रघुपति सहाय फ़िराक़ गोरखपुरी, **उर्दू भाषा और साहित्य**, पृ.350–51

[6] मौलाना अल्ताफ हुसैन हाली, **मुकदमा–ए–शेर–ओ–शायरी** में डॉ. नगेंद्र की भूमिका, पृ.17

[7] चानन गोविंदपुरी, **ग़ज़ल : एक अध्ययन**, पृ.34

[8] डॉ. नरेश, **आधुनिक कविता में उर्दू के तत्व**, पृ.25

[9] सरदार मुजावर (सं.), **हिंदी ग़ज़लः ग़ज़लकारों की नज़र में**, पृ.29

[10] वही, पृ.31

[11] वही, पृ.39

[12] वही, पृ.41

[13] वही, पृ.59

[14] वही, पृ.63

[15] वही पृ.121

[16] वही, पृ.121

[17] ओमप्रकाश शर्मा (सं.), बशीर बद्र, **मुहब्बत ख़ुशबू है**, पृ.20

[18] डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, **हिंदी ग़ज़ल उद्‌भव और विकास**, पृ.50

[19] डॉ. गिरीश जे. त्रिवेदी, **दुष्यंत कुमार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व**, पृ.114–115

[20] डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, **हिंदी ग़ज़ल उद्‌भव और विकास**, पृ.50

[21] वही, पृ.51

[22] वही, पृ.53

[23] वही, पृ.54

[24] मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, कांतिमोहन 'सोज', रेखा अवस्थी (सं.), साहिर लुधियानवी, **जाग उठे ख़्वाब कई**, पृ.41

[25] वही, पृ.77

[26] साहिर लुधियानवी, **तल्खियाँ**, पृ.130

[27] दुष्यंत कुमार, **साये में धूप**, पृ.13

[28] वही, पृ.57

[29] डॉ. नरेश, **हिंदी ग़ज़लःदशा और दिशा**, पृ.17

[30] ज्ञान प्रकाश विवेक, **हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा**, पृ.84

[31] बहर संबंधी यह विवेचना डॉ. रोहिताश्व अस्थाना की **हिंदी ग़ज़ल उद्‌भव और विकास**, तथा ज्ञान प्रकाश विवेक की **हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा** पर आधारित है।

[32] ज्ञान प्रकाश विवेक, **हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा**, पृ.86

[33] वही, पृ.86–87

[34] रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **सुकून की तलाश**, पृ.14

[35] दुष्यंत कुमार, **साये में धूप**, पृ.13

[36] त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल**, पृ.34

[37] रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **सुकून की तलाश**, पृ.37

[38] त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल**, पृ.25

[39] दुष्यंत कुमार, **साये में धूप**, पृ.44

[40] वही, पृ.14

[41] ज्ञान प्रकाश विवेक, **हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा**, पृ.5

[42] सरदार मुज़ावर (सं.), **हिंदी ग़ज़लः ग़ज़लकारों की नज़र में**, पृ.26

[43] वही, पृ.63

[44] वही, पृ.77

[45] अयोध्याप्रसाद गोयलीय, **शेर–ओ–सुख़न**, पृ.25–26

[46] ज्ञान प्रकाश विवेक, **हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा**, पृ.44

[47] सरदार मुजावर (सं.), **हिंदी ग़ज़लः ग़ज़लकारों की नज़र में**, पृ.116

[48] ज्ञान प्रकाश विवेक, **हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा** से उद्धृत, पृ.45

[49] सरदार मुजावर (सं.), **हिंदी ग़ज़लः ग़ज़लकारों की नज़र में**, पृ.49

[50] वही, पृ.55

[51] वही, पृ.129

[52] वही, पृ.41

[53] वही, पृ.63

[54] वही, पृ.92

[55] सरदार मुज़ावर (सं.), **हिंदी ग़ज़ल की नई दिशाएँ,** पृ.*vii*

[56] सरदार मुज़ावर (सं.), **हिंदी ग़ज़लः ग़ज़ल ग़ज़लकारों की नज़र में**, पृ.29

[57] वही, पृ.31

[58] वही, पृ.68

[59] वही, पृ.30

[60] वही, पृ.129

[61] वही, पृ.122

[62] वही, पृ.51

[63] वही, पृ.155

[64] वही, पृ.130

[65] वही, पृ.30

[66] डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, **हिंदी ग़ज़लः उद्‌भव और विकास** से उद्धृत, पृ.300

[67] डॉ. सरदार मुजावर, **हिंदी की छायावादी ग़ज़ल**, पृ.97

[68] सरदार मुजावर (सं.), **हिंदी ग़ज़ल की नई दिशाएँ,** पृ.97

[69] ज्ञान प्रकाश विवेक, **हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा**, पृ.82

[70] वही, पृ.83

[71] ज्ञान प्रकाश विवेक, **हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा**, पृ.30

[72] वही, पृ.30

[73] वही, पृ.37

[74] सरदार मुजावर (सं.), **हिंदी ग़ज़लः ग़ज़लकारों की नज़र में**, पृ. 56

[75] सरदार मुजावर (सं.), **हिंदी ग़ज़लः ग़ज़लकारों की नज़र में**, पृ. 56

□ तीसरा अध्याय

त्रिलोचन और शमशेर की ग़ज़लों में संवेदना का स्वरूप

त्रिलोचन और शमशेर हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के अत्यंत महत्वपूर्ण कवि हैं। दोनों का सृजन काल समान है। दोनों एक ही प्रगतिशील विचारधारा के कवि माने जाते हैं। दोनों ने हिंदी में कविताओं के साथ–साथ ग़ज़लें भी लिखी हैं। त्रिलोचन का ग़ज़ल संकलन 'गुलाब और बुलबुल' नाम से 1956 में छपा जबकि शमशेर की ग़ज़लें समय–समय पर उनके काव्य संग्रहों में आती रही हैं, जिन्हें एकत्र करके रंजना अरगड़े ने 'सुकून की तलाश' नाम से 1998 में प्रकाशित करवाया। शमशेर अपनी ग़ज़लों को हिंदी का ही मानते थे और उन्होंने उन्हें कभी अपनी कविताओं से अलग करके नहीं देखा। शमशेर कहते हैं, ''मैं अपनी ग़ज़लों को हिंदी रचनाओं से कभी अलग नहीं रखना चाहूँगा।''[1]

त्रिलोचन ने भी एक ही ग़ज़ल संकलन प्रकाशित कर फिर दोबारा ग़ज़ल लेखन नहीं किया। उनकी ग़ज़ल भी हिंदी की प्रकृति की ही है। शमशेर की ग़ज़लें भी हिंदी की प्रकृति की ही हैं। शमशेर की ग़ज़ले उर्दू ग़ज़लों की परंपरागत ज़मीन पर ही रची गई हैं जबकि त्रिलोचन हिंदी में ग़ज़लों के लिए जमीन तलाश कर रहे हैं। शमशेर की ग़ज़लों में उर्दू के मुहावरे हैं जबकि त्रिलोचन की ग़ज़लों में ठेठ हिंदी के मुहावरे का प्रयोग है। जिस प्रकार शमशेर और त्रिलोचन के काव्य में संवेदना के धरातल पर अन्तर हैं। उसी प्रकार इन दोनों की ग़ज़ल लेखन में भी अंतर हैं।

कोई रचनाकार समाज से क्या ग्रहण कर रहा है। उसकी रचना में किन विषयों को जगह प्राप्त होती है। और किन को नहीं। यह उनकी संवेदना पर निर्भर करता है।

कोई भी रचनात्मक अभिव्यक्ति अपने समय और समाज के प्रति व्यक्त की गई एक ख़ास तरह की प्रतिक्रिया होती है। रचना में अपने समय के समाज का और रचनाकार के स्वयं का जो बोध होता है। उसे ही हम रचना की संवेदना कहते है। संवेदना से तात्पर्य रचनाकार के परिवेश एवं मूल्य व्यवस्था के बरक्स उसकी मानसिक और वैचारिक काल खंड में अस्तित्वमान जीवन, उसके मूल्य, संस्कृति राजनीति इत्यादि पर उस समय के रचनाकार के नज़रिए यानी दृष्टिकोण को हम उसकी संवेदना कहते हैं। इसी संवेदना के चलते किसी रचनाकार में अपने समय का पूरा समाज सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में भी उपस्थित रहता है और उसमें आने वाले समय की पदचाप भी सुनाई पड़ जाती है, जबकि कुछ अन्य रचनाकारों में अपनी व्यथा गान से आगे कुछ नहीं मिलता। यही फ़र्क़ किसी रचनाकार को छोटा या बड़ा बनाता है।

किसी रचनाकार की संवेदना के निर्माण में उसकी विश्वदृष्टि का भी योगदान होता है। विश्व को देखने की उसकी समझ ही उसकी संचेदना को निर्मित करती है। किसी रचनाकार की संवेदना को निर्मित करने में उसके युग, परिवेश, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। रचनाकार को अपने परिवेश से जुड़ना ही होता है। बिना अपने परिवेश से जुड़े कोई भी रचनाकार संवेदना ग्रहण नहीं कर सकता। मुक्तिबोध के शब्दों में एक साहित्यकार, ''जीवन और जगत का सूक्ष्मता से दर्शन करता है। उसके संपर्क में आई हुई वस्तु उसके भाव–बोध को उत्तेजित कर देती है। सर्जक की चेतना में जिस वस्तुगण या भाव का ग्रहण होता है वही उसकी संवेदना को निर्मित करती है। भाव–ग्रहण के प्रकार भेद से कभी उसमें किसी प्रतिक्रिया का जन्म होता है, कभी किसी धारणा का, कभी किसी जीवन सत्य का और अंततः किसी–न–किसी अनुभूति का। भाव ग्रहण के विभिन्न धरातल हुआ करते हैं।...जो संवेदनाएँ उसकी चेतना में गृहीत होती हैं उन्हीं को शोधित कर वह संप्रेषित करता है।''[2] इसी संदर्भ में अफ्रीकी रचनाकार न्गुगी वा थ्योंगो का मत ध्यान देने योग्य है कि कोई भी लेखक, ''किसी ख़ास वर्ग, नस्ल अथवा देश का ही होता है। वह ख़ुद भी एक वास्तविक सामाजिक प्रक्रिया– खाना–पीना, पढ़ना, प्यार करना, नफ़रत करना

आदि की उपज है और उसने इन सारी गतिविधियों के प्रति एक ख़ास तरह का वर्गीय दृष्टिकोण विकसित किया है और उसकी गतिविधियाँ भी इस दृष्टिकोण द्वारा ही संचालित होती हैं।''[3] इस प्रकार उनके अनुसार प्रत्येक रचनाकार सामाजिक प्रक्रियाओं की उपज होता है और उसी से उसका दृष्टिकोण निर्धारित होता है जिसके अनुसार वह लेखन करता है।

इस तरह हम देखते हैं कि प्रत्येक रचनाकार की संवेदना का धरातल भिन्न होता है। रचनाकार की संवेदना को निर्मित करने में उसकी विश्वदृष्टि और उसके परिवेश का महत्वपूर्ण योगदान होता है। उसमें भी प्रत्येक रचनाकार अपने परिवेश से क्या ग्रहण करता है, जिससे उसकी संवेदना निर्मित होती है, यह उसकी सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

इसी प्रकार त्रिलोचन और शमशेर दोनों एक ही समय के रचनाकार हैं, अतः दोनों की संवेदनाओं में कुछ हद तक समानताएँ और काफी हद तक अंतर देखने को मिलता है। जिस प्रकार हर रचनाकार की संवेदना अलग होती है, उसी प्रकार इनकी संवेदना का स्वरूप भी भिन्न है। यह संवेदना की भिन्नता उनकी कविताओं में तो है ही, साथ ही यह उनकी ग़ज़लों में भी देखने को मिलती है। इनकी संवेदना के स्वरूप का आकलन करने के लिए हमें इनकी ग़ज़लों को निम्न धरातलों पर बाँट कर देखना होगाः

1. प्रेम और सौंदर्य की अभिव्यक्ति
2. राजनीतिक एवं सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति
3. प्रकृति की अभिव्यक्ति
4. अन्य अभिव्यक्तियाँ

1. प्रेम और सौंदर्य की अभिव्यक्ति

ग़ज़ल चूँकि प्रेम विषयक काव्य विधा है अतः इसमें प्रेम और सौंदर्य की अभिव्यक्ति होना स्वाभाविक है। त्रिलोचन हिंदी की ज़मीन पर ग़ज़लें लिख रहे थे, इसलिए उनकी ग़ज़लों में प्रेम की अभिव्यंजना उर्दू की परंपरागत शायरी से अलग है, जबकि शमशेर उर्दू की ज़मीन पर ही ग़ज़लें लिख रहे थे इसलिए उनकी ग़ज़लों में परंपरागत उर्दू की इश्क़िया शायरी जैसा आस्वाद मिलता है।

त्रिलोचन की ग़ज़लों में प्रेम के साथ–साथ पीड़ा का भी चित्रण है। उनकी ग़ज़लों में प्रेम का जो चित्रण है, वह सहज प्रेम है। उनके प्रेम चित्रण में एक प्रकार का संकोच और अनन्यता है। चंद्रबली सिंह त्रिलोचन के प्रेम विषयक दृष्टिकोण की ओर संकेत करते हुए कहते हैं, ''प्रगतिवादी कवियों में सौंदर्यवादी रूझान उनमें सबसे ज्यादा है।... यह सौंदर्य उनके लिए केवल प्रेम तक सीमित नहीं है बल्कि पूरे अस्तित्व में है।''[4]

तेरे गगन में मेघ बन के छा गया हूँ मैं,
कितना समीप से समीप आ गया हूँ मैं,

तेरी गली में गीत मन के गा गया हूँ मैं
स्वर की पहुँच में आज तुझे पा गया हूँ मैं[5]

त्रिलोचन की इन पंक्तियों में प्रेम का परंपरागत रूप और लहज़ा झलकता है। परंतु यह त्रिलोचन की ग़ज़लों में कम ही देखने को मिलता है। त्रिलोचन की ग़ज़लों में प्रेम से उत्पन्न दर्द का भी चित्रण हुआ है, परंतु वह दर्द उन्हें समाज निरपेक्ष नहीं बनाता वह तो दूसरों से जोड़ता है। त्रिलोचन का दर्द इसी प्रकार का हैः

दर्द जो आया तो दिल में उसे जगह दे दी,
आ के जो बैठ गया मुझसे उठाया न गया[6]

इस शेर में त्रिलोचन की संवेदनशीलता का पता चलता है। त्रिलोचन जैसे व्यक्ति में ही जीवन के दुर्निवार दुख और पीड़ा स्थान पाते हैं। ''उनमें अपने और दूसरों के दुख की गहरी अनुभूति और फिर उसकी अभिव्यक्ति तो है पर उसको लेकर कोई शोरगुल नहीं है। दुख को तटस्थ भाव से देखना, केवल देखते रहना यह त्रिलोचन का ढंग है, जो उनकी कविता को रूमानी कवियों की तुलना में ज्यादा बेधक और मारक बनाता है।''[7]

दुख में भी परिचित मुखों को तुम ने पहचाना है क्या
अपना ही सा उनका मन है यह कभी माना है क्या[8]

त्रिलोचन की ग़ज़लों में वह शोखी एवं अल्हड़पन देखने को नहीं मिलता जो उर्दू शायरी में आमतौर पर देखा जाता है। त्रिलोचन के यहाँ प्रेम में एक प्रकार की उदासी देखने को मिलती है। उनमें एक तरह की शिथिलता एवं दर्द है–उनके यहाँ प्रेम में विषाद का स्वर देखने को मिलता है।

आजकल क्या कुछ इधर मेरे हृदय को हो गया
चुप ही चुप है, अब उसे रोना है क्या गाना है क्या

जब तुम्हीं से दूर हूँ तब मैं निकट किसके रहूँ
होश जाने पर यहाँ खोना है क्या पाना है क्या[9]

त्रिलोचन की ग़ज़लों में जो प्रेमिका से वार्तालाप है, वह भी नए तरीके का है उसमें उलाहने से ज़्यादा सवाल व अचरज जान पड़ता है। यह अचरज प्रेमिका के ऐसे व्यवहार से होता है जिसकी वह उम्मीद नहीं करतेः

अपना समझ के मैंने तुम्हें दिल दिखा दिया
क्यों तुमने भेद उस का विश्व को बता दिया[10]

अथवा

जागरण की रात यह तेरा ख़याल आ ही गया
तू कहाँ है आज फिर मन में सवाल आ ही गया[11]

त्रिलोचन की ग़ज़लों में प्रेम और सौंदर्य के जो प्रतीक प्रयोग में लाए गए हैं वह पुराने होते हुए भी नएपन का एहसास कराते हैं। दरअसल उनमें त्रिलोचन के लेखन एवं उनके व्यक्तित्व की सादगी के दृश्य होते हैं:

और जो कुछ भी हो पर इस से तो इनकार नहीं
तू न चाहे तो मुझे जीना भी स्वीकार नहीं

प्यार जिस ने न कभी देखा सुना या जाना
कैसे समझेगा यही प्यार है य 'प्यार नहीं'

मैं तेरी राह में खुद चलके इसलिए बैठा
घर मैं तू क़ैद है तुझ पर मेरा अधिकार नहीं

मैंने और कुछ न किया तुझ को ह्रदय दे डाला
जीत वह मेरी है और जीत कभी हार नहीं[12]

त्रिलोचन के समस्त काव्य में एक सादगी दिखाई देती है। वही सादगी हमें उनकी ग़ज़लों में भी मिलती है। उनमें प्रेम में भी ठेठ देसी आदमी का ही प्रेम झलकता है। उनकी व्यंजनाएँ भी ठेठ देसी हैं। इनकी ग़ज़लों में उर्दू ग़ज़ल या ग़ज़ल विधा के अनुरूप जो प्रेम, जो श्रृंगार जो वियोग होना चाहिए उसका अभाव दिखाई पड़ता है। इनकी ग़ज़लों में वह रूमानियत नहीं है, जो ग़ज़लों के लिए अपेक्षित है।

शमशेर की ग़ज़लों में उर्दू की परंपरागत ग़ज़लों की रूमानियत देखने को मिलती है। प्रेम और सौंदर्य के चित्रण उनके संपूर्ण काव्य में बिखरे पड़े हैं और वही प्रेम और सौंदर्य संपूर्ण रूप में उनकी ग़ज़लों में भी देखने को मिलता है। प्रेम और सौंदर्य शमशेर की काव्य चेतना का केंद्र है। कह सकते हैं कि वह बुनियाद है जिस पर

शमशेर अपने काव्य की इमारत खड़ी करते हैं। शमशेर की काव्य–संवेदना में प्रेम और सौंदर्य महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। शमशेर के लिए प्रेम एक ऐसा संबंध है जो एक इनसान को दूसरे इनसान से जोड़ता हैः

और तो कुछ न किया, इश्क में पड़कर दिल ने
एक इंसान से इंसान वफा का बाँधा[13]

डॉ. वीरेंद्र सिंह करते हैं, ''प्रेम और हुस्न (सौंदर्य) का सापेक्ष–संबंध है लेकिन यह संबंध मात्र शारीरिक नहीं है, यह एक प्रकार का आंतरिक संबंध है जो विषय और विषयी को तादात्म्य की स्थिति तक पहुँचा देता है। कविता में प्रेम और सौंदर्य का महत्व इस बात में है कि वे कहाँ तक 'दर्द' और 'रूह' की चमक और 'जिला' को अर्थवत्ता दे सकते हैं। प्रेम की आंतरिक वेदना और व्यथा पर आधारित है और इसी वेदना से 'आत्मा' शुद्ध होती है।''[14]

इश्क़ की शायरी है ख़ाक़, हुस्न का ज़िक्र है मज़ाक
दर्द में गर चमक नहीं, रूह में गर जिला नहीं[15]

शमशेर की ग़ज़लों में परंपरागत उर्दू शायरी में व्यक्त होने वाले प्रेम के चित्र देखने को मिलते हैं। उनके यहाँ प्रेमिका की वही शोखी भरी चाल, उसका अल्हड़पन, वही नाजुकी, वही उसकी अदाएं देखने को मिलती हैंः

ये शोख़ चाल तेरी काफ़िराना मस्ताना।
किसी को ख़ाबो–ख़याले–शबाना मस्ताना।

जो ख़ुद ही बहका हुआ हो, तो उस पे क्यों डाले
भला कोई निगाहे–आशिक़ाना मस्ताना।[16]

शमशेर की ग़ज़लों में जो प्रेमिका से वार्तालाप हुआ है वह भी देखने लायक है। यह वार्तालाप उस्ताद शायरों की ग़ज़लों में प्रयुक्त हुए वार्तालाप–सा लगता है।

हो चुकी जब ख़त्म अपनी ज़िंदगी की दास्ताँ
उनकी फ़रमाइश हुई है, इसको दोबारा कहें।[17]

मैं आपसे कहने को ही था, फिर आया ख़याल एकाएक
कुछ बातें समझना दिल की, होती हैं मोहाल एकाएक[18]

शमशेर की ग़ज़लों में रूमानियत है, उसमें प्रेम का चित्रण है। उसमें भाव है और संगीत भी है। शमशेर के यहाँ 'इश्क' 'हुस्न' के साथ ग़म का भी गहरा संबंध है। दर्द, पीड़ा ही वह दशा है जो व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ती है। प्रेम की परिपक्वता 'दर्द' के द्वारा ही होती है। यह संवेदना सूफी और भारतीय परंपरा के मेल से पैदा हुई है। इसमें एक प्रकार की बेखुदी है:

क़रीबे–हुस्न जो पहुँचा तो ग़म कहाँ पहुँचा
हमीं को होश नहीं, आपको तो क्योंकर हो।[19]

शमशेर की ग़ज़लों में प्रेम और सौंदर्य के जो प्रतीक इस्तेमाल हुए हैं, वे परंपरागत उर्दू शायरी के ही हैं। हालाँकि कहीं–कहीं नए प्रतीकों का भी प्रयोग हुआ है, परंतु वह बहुत कम है:

फिर निगाहों ने तेरी दिल में कहीं चुटकी ली
फिर मेरे दर्द ने पैमान वफ़ा का बाँधा

एक फाहा भी मेरे ज़ख़्म पे रक्खा न गया
और सर पे मेरे एहसान दवा का बाँधा

इस तकल्लुफ़ की मोहब्बत थी कि उठते ही बनी
रंग यारों ने वो मेहमान सरा का बाँधा[20]

शमशेर की ग़ज़लें अधिकतर प्रेम व सौंदर्य विषयक ही हैं। उनकी 22 ग़ज़लों में पाँच–छह ग़ज़लों को यदि छोड़ दिया जाए, तो बाकी ग़ज़लों का विषय प्रेम और सौंदर्य ही है।

त्रिलोचन और शमशेर की ग़ज़लों में व्यक्त प्रेम और सौंदर्य को देखा जाए तो हम पाते हैं कि त्रिलोचन की ग़ज़लों में जो प्रेम और सौंदर्य व्यक्त हुआ है, उसमें एक रूखापन है। उसमें वह रूमानियत नहीं है जो हमें शमशेर के यहाँ मिलती है। शमशेर स्वयं स्वीकार करते हैं, ''मेरी असली ज़मीन तो रोमानी ही थी, रोमानी ही बनी रही, जिसमें इक़बाल और शैली का आदर्शवाद और निराला और रवींद्रनाथ के छायावादी या रहस्यवादी अद्वैत की छाया भी कहीं–न–कहीं शामिल थी।''[21]

इस तरह हम पाते हैं कि शमशेर की ग़ज़लें प्रेम और सौंदर्य की ग़ज़लें ही हैं, जो उनकी काव्यगत संवेदना का मूल आधार है। जबकि त्रिलोचन की ग़ज़लों में प्रेम और सौंदर्य की उस प्रकार की व्यंजना नहीं हुई, जिस प्रकार की ग़ज़लों में उम्मीद की जाती है। त्रिलोचन की ग़ज़लों में प्रेम और सौंदर्य की सादगी है तथा शमशेर के यहाँ यह एक रूमानी एहसास है।

2. राजनीतिक एवं सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति

अपने समय के राजनीतिक और सामाजिक परिवेश की सच्चाई को अभिव्यक्त करना एक सजग रचनाकार की ज़िम्मेदारी होती है। एक सजग रचनाकार किसी भी विधा में रचना करता है तो रचना में राजनीतिक एवं सामाजिक यथार्थ अभिव्यक्त होती ही है।

त्रिलोचन और शमशेर जिस समय में काव्य रचना कर रहे थे, वह हिंदी साहित्य में प्रगतिवाद का दौर था। साहित्य में मार्क्सवादी विचारधारा को आधार बनाकर रचनाएं की जा रही थीं और साहित्यकार शोषित–पीड़ित जनता के पक्ष में रचनाएं कर रहे थे। त्रिलोचन और शमशेर के साहित्य में भी हमें यह प्रगतिवादी चेतना दिखाई देती है। त्रिलोचन तो मुख्यतः प्रगतिवादी कवि के बतौर ही जाने जाते हैं और शमशेर के काव्य

में प्रयोगवादी स्वर के साथ प्रगतिवादी चेतना भी मिलती है। प्रगतिवाद में राजनीति और सामाजिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। इसमें राजनीति एवं समाज में व्याप्त सभी प्रकार की विसंगतियों का न केवल यथार्थ चित्रण किया गया है अपितु उन पर कुठाराघात भी किया गया है। प्रगतिवादी कवि वर्ग–संघर्ष में विश्वास करते हैं। समाज में व्याप्त वर्ग संघर्ष में वह समाज के उत्पीड़ित, शोषित एवं सर्वहारा वर्ग के साथ खड़े होते हैं और सर्वहारा वर्ग की क्रांति को सफल बनाने का प्रयत्न करते हैं। त्रिलोचन और शमशेर के यहाँ भी हमें यह पक्षधरता देखने को मिलती है।

जिस समय त्रिलोचन और शमशेर ग़ज़ल लिख रहे थे उस समय उर्दू की ग़ज़ल भी अपने परंपरागत रूप को त्यागकर सामाजिक पक्ष की भूमिका का निर्वाह कर रही थी। उर्दू के ज़दीद तरक्कीपसंद शायरों ने अपने ग़ज़ल के माध्यम से मुल्क की अवाम को आवाज़ दी और उनके पक्ष में खड़े हुए। ऐसे शायरों में फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़', अली सरदार जाफ़री, साहिर लुधियानवी, कैफ़ी आज़मी आदि का नाम प्रमुख हैं।

उर्दू ग़ज़ल में आए इस बदलाव का प्रभाव भी हमें हिंदी ग़ज़ल पर देखने को मिलता है। हिंदी ग़ज़ल भी सामाजिक दायित्व को समझते हुए अपनी भूमिका को निभाने लगी। त्रिलोचन और शमशेर की ग़ज़लों में भी हमें यही राजनीतिक और सामाजिक यथार्थ देखने को मिलता है।

त्रिलोचन के समस्त काव्य में यही प्रगतिवादी चेतना देखने को मिलती है। अपनी ग़ज़लों में भी वह अपने पाठक को ज़िंदगी की तल्ख़ सच्चाइयों से रू–ब–रू कराते हैं:

ज़िंदगी कितनों की कटती है आस्माँ के तले
एक छप्पर भी किसी से यहाँ छाया न गया[22]

वे भी जीते हैं जिन्हें ठौर ठिकाना भी नहीं
राह चलते हैं कहीं पाँव टिकाना भी नहीं[23]

इस शेर में त्रिलोचन समाज की इस निर्मम सच्चाई को सामने रखते हैं कि यहाँ पर लोगों के पास रहने को घर नहीं है, लोग सड़कों पर जीवन बिता देते हैं। आज के समय में एक छत का प्रबंध करना कितना मुश्किल है। जीवन जीना दिन–ब–दिन कितना मुश्किल होता जा रहा है। वह सपाट शब्दों में रख देते हैं:

बिस्तरा है न चारपाई है
ज़िंदगी ख़ूब हम ने पाई है

कल अँधेरे में जिसने सर काटा
नाम मत लो हमारा भाई है

आदमी जी रहा है मरने को
सब के ऊपर यही सच्चाई है[24]

वह जीवन के संत्रास को अपनी ग़ज़लों में बखूबी व्यक्त करते हैं। इसी कारण आलोचक रामविलास शर्मा ने लिखा है, ''भूख, उपवास और बेरोज़गारी पर जैसी अनुभूति–तीव्रता त्रिलोचन की कविताओं में है वैसी अन्य किसी प्रगतिशील कवि में नहीं।''[25] त्रिलोचन न केवल भूख, बेरोज़गारी व ग़रीबी को उकेरते हैं, बल्कि वह इनके कारणों की भी पड़ताल करते हैं कि आख़िर यह सब क्यों है। वह पाठक को बताने के साथ सजग करते हैं कि यह सब साम्राज्यवाद के कारण है:

साम्राज्यवाद उपनिवेश अब भी खोज रहा है
हे मुक्त भूल मत कि कृपा कर चला गया[26]

वह पाठकों को इस भुलावे से बचाना चाहते हैं कि साम्राज्यवाद चला गया है, उपनिवेश समाप्त हो गए हैं। वह कहते हैं कि अभी भी हम साम्राज्यवाद के चंगुल में फँसे हुए हैं और यह हमें अपना गुलाम बनाने के नए–नए तरीके निकालता रहता है। अब शांति के ढकोसले के नाम पर यह हमें लूटता है। यहाँ शांति की बात का मतलब है चुपचाप लुटते जाना और कुछ न कहना:

सिकंदर ग़ज़नवी तैमूर तो केवल लुटेरे थे
इधर अब शांति की इच्छा से संगर हो जाता है[27]

वह हमें बताते हैं कि चीज़ें आज भी वही हैं। आज भी कुछ बदला नहीं है परंतु वह यह आशा भी बँधाते हैं कि हमें स्वतंत्रता ज़रूर मिलेगी। इसके लिए प्रयास करते रहने होंगे। वह आज़ादी के नारे को झुठलाते हुए कहते हैं:

चीज़ें वही हैं आज भी
य' क्या कि अब वो सत नहीं

होगी स्वतंत्रता ज़रूर
होंगे विचार हत नहीं[28]

वह कहते हैं कि विचार समाप्त नहीं होते। यदि विचार रहेंगे तो स्वतंत्रता के लिए संघर्ष भी रहेगा। वह तत्कालीन राजनीतिज्ञों पर व्यंग्य करते हैं और विस्थापन की उनकी नीतियों की भी आलोचना करते हुए कहते हैं:

अब बसाते नहीं उजाड़ते हैं
कहते हैं इससे नाम होता है[29]

त्रिलोचन शोषित–पीड़ित वर्ग के ग़ज़लकार हैं। वह समाज की विसंगतियों को देखते ही नहीं अपितु अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए लड़ते रहने की ज़रूरत को भी समझते है। लड़ाई के अलावा और कोई रास्ता ही नहीं है। वह कहते हैं:

लड़ते हैं इसलिए कि और राह नहीं है
लड़ते रहेंगे युद्ध में क्या चीज़ हार है[30]

इस प्रकार हम देखते हैं कि त्रिलोचन की ग़ज़लों में राजनीतिक और सामाजिक यथार्थ की बड़े तीव्र रूप में अभिव्यक्ति हुई है। दरअसल यह त्रिलोचन का व्यक्तित्व ही है– सादा और खरा। वह अपनी बात को सरल और ठोस ढंग से स्थापित करते हैं। वे

इस से भी नहीं बँधते कि किस विधा में लिख रहे हैं। ग़ज़ल का मिज़ाज सीधे–सीधे कहने का नहीं है उसमें संकेतों से बात की जाती है। परंतु त्रिलोचन उसका पालन न करके अपने तरीके से बात कहते हैं। डॉ. गोबिंद प्रसाद उनके इसी लहज़े पर लिखते हैं कि ''उसकी कविता को शब्दों का ज़ाज़मी लिबास फ़बता नहीं। मिज़ाज की भव्यता और मीनाकारी या नक्काशी से उन्हें दूर तक लेना–देना नहीं।''[31] त्रिलोचन को अपनी बात कहनी होती है और वह कह देते हैं उसके लिए वह कोई बनावट या नक्काशी का सहारा नहीं लेते। वह तो सहज व सपाट ढंग से कह देते हैं। उनके किसान जीवन का असर उनके काव्य पर तो पड़ता ही है, साथ ही यह असर उनकी ग़ज़लों पर भी पड़ता है, जिसके कारण वह ग़ज़ल के सिन्फ को उसके परंपरागत लहज़े से बाहर लाकर उसे नई ज़मीन पर खड़ा करते हैं और यह नई ज़मीन उनकी अपनी खेती की ज़मीन है, जिस पर वह अपने विचार, भाव और संवेदना को बोते है। अब फसल कैसी होगी, इसकी वह चिंता नहीं करते।

शमशेर की प्रकृति यथार्थ के ग़ज़लों में प्रकट करने के मामले में त्रिलोचन से भिन्न है। वह उर्दू की परंपरागत शायरी की ज़मीन पर खड़े होकर ग़ज़ले कहते हैं, जिसमें सांकेतिकता का प्रयोग किया जाता है। वहाँ साफ लहज़े में बात नहीं कही जाती। शमशेर के यहाँ भी इसी सांकेतिकता का प्रयोग यथार्थ को प्रकट करने में भी मिलता है। शमशेर अपने को रूमानी कवि स्वीकारते हैं परंतु इस ग़ैररूमानी दुनिया में उनका यह रूमान उनका हठ ही है। दरअसल यह शमशेर की प्रकृति ही है जिसमें रूमान तो है ही परंतु वह इस गैररूमानी दुनिया के प्रति सजग हैं। इसलिए वह अपने को कल्पना लोक से बाहर लाने का स्वयं आग्रह करते हैं। उनमें यथार्थ और कल्पना का यह द्वंद्व चलता रहता है। इस संदर्भ में डॉ. वीरेंद्र सिंह कहते हैं, ''उनकी यह 'दृष्टि' निरपेक्ष न होकर सापेक्ष है, जिसमें जन–आकांक्षाओं के प्रति एक बेचैनी है। यथार्थ के प्रति यह दृष्टिकोण कल्पना (तखैयुल) से परे वास्तव की कठोर भूमि पर आधारित है–यथार्थ और कल्पना का यह द्वंद्व कवि की एक ऐसी मुश्किल है जिस पर वह काबू पाना चाहता है।''[32]

हकीकत को लाए तखैयुल से बाहर
मेरी मुश्किलों का जो हल कोई लाए

कहीं सर्द लू में तड़पती है बिजली
ज़माने का रद्दो बदल कोई लाए[33]

शमशेर की प्रकृति बेशक रूमानी हो परंतु वह समाज की हकीकत को बयान करने से नहीं हिचकिचाते हैं। वह जीवन और उसके संघर्षों में हिस्सा लेना अपनी ज़िम्मेदारी समझते हैं। 'उदिता' की भूमिका में वे लिखते हैं, ''यह ग़नीमत है कि मुझ जैसे दो चार अजीबोग़रीब कवि हिंदी में हैं, वह करीब–करीब सब जीवन के मौजूदा संघर्षों में जहाँ तक मुमकिन है हिस्सा लेना अपनी कला और अपने समाज की ज़िंदगी की भलाई के लिए ज़रूरी समझते हैं।''[34]

शमशेर संघर्षों में हिस्सा लेने की अपनी इस जिम्मेदारी को अंत तक नहीं भूले और वह इसे अपनी ग़ज़लों में अभिव्यक्त करना भी नहीं भूले। हालाँकि ग़ज़ल विधा के अनुरूप उन्होंने सांकेतिकता का प्रयोग किया है, वह इस आज़ादी से संतुष्ट नहीं है और इस तथाकथित आज़ादी को वह केवल वहम समझते हैं:

आज़ादियाँ हैं खित्तए–वहम–ओ–गुमाँ के पार
आओ बसाएँ एक जहाँ इस जहाँ के पार[35]

वह सच्ची आज़ादी पाने के लिए एक नया जहान बसाने के लिए कहते हैं, जहाँ पर सही मायने में स्वतंत्रता हो। दरअसल यह समानता और स्वतंत्रता पर आधारित ऐसे समाज की कल्पना है, जिसमें अमन–चैन हो:

क़ायम महाज़ अम्न के हिंदोस्ताँ से हों
फ़ौजें न जाएँ सरहदे–हिंदोस्ताँ के पार[36]

वह आज के समाज में फैली मौकापरस्ती और उससे उपजी भ्रष्ट व्यवस्था पर चोट करते हैं:

राह तो एक थी हम दोनों की
आप किधर से आए–गए

हम जो लुट गए पिट गए, आप जो
राजभवन में पाए गए[37]

शमशेर व्यवस्था पर चोट करने के साथ–साथ धार्मिक उन्माद और उससे फैली वहशत पर भी चोट करते हैं, जो इनसान को इनसान से अलग करती है। वह राजनीति और धर्म के संबंध को भी संकेत के माध्यम से उभारते हैं:

जितना ही लाउडस्पीकर चीख़ा
उतना ही ईश्वर दूर हुआ
(अल्ला–ईश्वर दूर हुए)
उतने ही दंगे फैले, जितने
'दीन–धरम' फैलाए गए[38]

वह इन दंगों की राजनीति के साथ–साथ साम्राज्यवादी हस्तक्षेप को भी अमेरिका के माध्यम से दिखाते हैं:

मूर्ति–चोर मंदिर में बैठा
औ' गाहक अमरीका में

दान–दच्छिना लाखों डॉलर
गुपुत–दान करवाए गए[39]

शमशेर राजनीति और धर्म के गठजोड़ को खोलकर रख देते हैं। यह गठजोड़ इनसान को ख़त्म कर रहा है। वह चिंतित हैं कि राजनीति और धर्म के इस व्यापार ने इनसान को ख़त्म कर दिया है। उसकी इनसानियत बची नहीं रह गई है।

कैसा सियासत का तूफ़ान कि आग की लपटों में इनसान
अपनों पर अपनों की ही बेदादगरी क्यों बाक़ी है

धर्म तिजारत पेशा था जो वही हमें ले डूबा है
बीच भँवर के सौदे में यह इक खंजरी क्यों बाकी है[40]

शमशेर ने समाज में व्याप्त सभी तरह की विसंगतियों पर प्रहार किया है वह मार्क्सवाद से अपनी संजीवनी शक्ति ग्रहण करते थे, यह उन्होंने स्वीकारा भी है। उन्हें समाज की सभी विसंगतियाँ आहत करती थीं। सांप्रदायिकता से वह अंदर तक आहत हुए हैं। वह कहते हैं, ''घोर सांप्रदायिक दंगों के दौरान (1946) जब उपलब्ध 'मौक़ों' से 'फायदा' उठाकर लोग अपने–अपने व्यक्तिगत प्रतिद्वंद्वियों और दुश्मनों को 'धर्म' और 'मज़हब' के नाम पर गुंडों और मवालियों को रुपए दे–देकर ख़त्म करवाने में लगे थे, तो हद यहाँ तक पहुँच गई थी कि ये गुंडे पंद्रह–पंद्रह रुपए...और अंत में दो–दो रुपए तक के लिए भी हत्याएँ करने को तैयार हो जाते थे क्योंकि सांप्रदायिक हत्याओं का बाज़ार वैसे ही गर्म था। अतः हत्याएँ करवानेवालों ने इन दो–दो रुपयों के साथ कुछ 'शर्तें' भी जोड़ दी थीं, जिनका पालन करना अनिवार्य था : मसलन यह कि नियत स्थान और समय पर ही 'काम' हो। यह मनुष्य नामधारी हिंस्त्र पशु के पतन की पराकाष्ठा थी।''[41] शमशेर पतन की इस पराकाष्ठा को अपनी ग़ज़ल में व्यक्त करते हैं:

यह क्या सुना है मैंने कि 'दो रुपए सर है आज!
कुछ शहर बंबई की ज़बानी ख़बर है आज!

पंद्रह से दो पे गिर गया बाज़ार क़ौम का!
क्या सस्ती फ़िरक़ेवार शहीदों की दर है आज![42]

शमशेर ने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से समाज की संपूर्ण विसंगतियों और विद्रूपताओं को उजागर किया है। वह आज के मानव की दशा भी व्यक्त करते हैं, जहाँ पर वह आ गया है। वह कहते हैं कि यह स्थान 'बीहड़' है और कहा जा रहा है कि इस 'बीहड़' में 'सफ़र' समाप्त हो गया है यानी क्या हमें यहाँ तक ही आना था?

बीहड़ बनों में डाल दिया है पड़ाव, और
कहते हैं आप, ख़त्म हमारा सफ़र है आज!![43]

परंतु यहाँ 'सफ़र' समाप्त नहीं हुआ है, यहाँ से आगे बढ़ना होगा। हमें अपनी इनसानियत को फिर से प्राप्त करना होगा।

शमशेर हमारे राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में फूंके जानेवाले 'अहिंसा' के मंत्र पर भी व्यंग्य करते हैं। शमशेर इस स्थिति पर व्यंग्य करते हैं कि जब शोषित–पीड़ित जनता लड़ती है और अपनी आवाज उठाती है तो उसे 'अंहिसा' का जाप करने की सलाह दी जाती है तथा स्वयं प्रभुत्वशाली राजनीतिक सामाजिक तबके के लोग, इस अंहिसा के नाम पर अपनी अनीति एवं स्वार्थ के प्रचार–प्रसार का कार्य करते हैं और आम जनमानस के संघर्षों को कुचल देते हैं।

कुछ शर्म खाएँ जी में अहिंसा के फ़ल्सफ़ी!
रूख़ उनके क़ाफ़िले का किधर था, किधर है आज!![44]

शमशेर की ग़ज़लों का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि उनकी ग़ज़लों में रूमानियत का भाव वहाँ है, जहाँ वह उर्दू की परंपरागत शायरी का अनुसरण करते हैं। मगर जब यथार्थ की भूमि पर उतर कर शायरी करते हैं तो उनका अंदाज़ एकदम अलग हो जाता है। उसमें परंपरागत शायरी का मज़ा भी रहता है और नवीनता का भी बोध होता है। हालाँकि शमशेर ने राजनीतिक, सामाजिक यथार्थपरक ग़जलें कम ही लिखी हैं, परंतु इसके बावजूद वह ग़ज़लों में यथार्थ के पक्ष की अवहेलना नहीं कर

पाए, क्योंकि यह उनकी संवेदना का अहम हिस्सा है जिसे उन्होंने ग़ज़लों के माध्यम से भी व्यक्त किया।

त्रिलोचन और शमशेर दोनों ने ही अपने ग़ज़ल संग्रहों में राजनीतिक एवं सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त किया है। जहाँ त्रिलोचन ने इस अभिव्यक्ति में अपने सहज, सादगी और किसानी जीवन का रंग भरा है वहीं शमशेर ने इस अभिव्यक्ति अपने तरह के शिल्प और कथ्य को जगह दी है। शमशेर ने ग़ज़ल के उस 'मूड' को बनाए रखा है, जो ग़ज़ल के लिए आवश्यक है जबकि त्रिलोचन 'मूड' के बजाए अपने को अभिव्यक्त करने में ज्यादा पाबंद रहे हैं। त्रिलोचन की ग़ज़लों के विषय में जीवन प्रकाश जोशी कहते हैं, ''इन ग़ज़लों के कथ्य–कथन के संदर्भ में, जीवन की वो ज़र्दशक्ल कलेजे को घेरे हुए है, जो 'जनवाद' की नारेबाज़ी से अलग, असलियत में है। 'गुलाब और बुलबुल' की कुल मिलाकर यह एक खूबी है।''[45] वह आगे कहते हैं, ''मगर ग़ैरमामूली यहाँ यह है कि मज़मून का सारा मसला ज़िंदगी का है। उस ज़िंदगी का, जो 'वाकई' से वाबस्ता है।''[46] इसी प्रकार हम शमशेर की ग़ज़लों के विषय में भी कह सकते हैं कि उनकी ग़ज़लों ने भी यथार्थ को बारीकी से उकेरा है। प्रभाकर श्रोत्रिय शमशेर की संवेदना को लेकर कहते हैं, ''शमशेर की संवेदना और काव्य–व्यक्तित्व का विकास वृक्ष की तरह हुआ है। रोमानियत प्रारंभ में जड़ों की तरह अधोमुखी रही है। इसे उन्होंने स्वयं घोर 'वैयक्तिक अतार्किक भावुकता' कहा है।''[47]

परंतु मार्क्सवाद के संपर्क में आने के बाद उनकी इस भावुकता को नई ज़मीन मिली और उनकी संवेदना का विस्तार हुआ। उनके काव्य में यथार्थ का मार्मिक चित्रण हुआ।

इस तरह शमशेर और त्रिलोचन दोनों ने अपनी ग़ज़लों में सामाजिक, राजनीतिक यथार्थ को अभिव्यक्त किया। दोनों का इसे अभिव्यक्त करने का अपना अलग–अलग ढंग था परंतु वैचारिक व संवेदना का धरातल दोनों का एक ही था। कविता हो या ग़ज़ल या कोई भी विधा उसकी एक सामाजिक भूमिका होती है। जिसका निर्वाह सजग

रचनाकार को करना चाहिए। माहेश्वर के अनुसार ''क्योंकि कविता सामाजिक सरोकारों से निरपेक्ष रहकर जीवित भी नहीं रह सकती। वह सिर्फ अनुरंजन की वस्तु नहीं है। कविता लिखना ज़िम्मेदारी निभाना है। मनुष्य, समाज और देश के प्रति।''[48] यह ज़िम्मेदारी त्रिलोचन और शमशेर अपनी ग़ज़लों के माध्यम से बखूबी निभाते हैं।

3. प्रकृति की अभिव्यक्ति

त्रिलोचन और शमशेर दोनों की ग़ज़लों में प्रकृति की अभिव्यक्ति हुई है चूँकि दोनों ग़ज़लकार प्रगतिवादी हैं, इसलिए इनकी ग़ज़लों में इनकी कविताओं की तरह ही प्रकृति आई है। प्रकृति को केवल सौंदर्य चित्रण के लिए स्थान नहीं मिला बल्कि वह यथार्थ के चित्रण के रूप में भी प्रयोग में लाई गई है। इनके यहाँ प्रकृति को जीवन संदर्भों से जोड़कर देखा गया है। इनके यहाँ प्राकृतिक सौंदर्य तो बना ही रहता है, परंतु उसके माध्यम से सामाजिक जीवन के हर्ष–विषाद उसमें प्रतिबिंबित होते हैं। इनमें कल्पना प्रवणता बहुत अधिक नहीं दिखाई देती है। इनमें प्रकृति के साथ जीवन के यथार्थ बोध का गहरा संबंध व्यक्त हुआ है। इनकी ग़ज़लों में मानव जीवन के संदर्भों से जुड़कर प्रकृति सजीव हो उठती है।

त्रिलोचन की ग़ज़लों में प्रकृति उसी रूप में व्यक्त हुई जैसे कि उनके काव्य में व्यक्त होती है। आलोचक नंदकिशोर नवल कहते हैं, ''भौतिक जीवन के प्रति त्रिलोचन के मन में जो आकर्षण है उसका अकाट्य प्रमाण है उनका प्रकृति प्रेम। प्रकृति उनकी चेतना का अंग है इसलिए वह विभिन्न रूपों में उनकी कविताओं में आती है।''[49]

शर्म खाएगी य' कोयल कभी न गाएगी
बाग़ में चैत महीने में, यूँ गाया न करो[50]

यहाँ त्रिलोचन अपनी प्रेमिका की मधुर वाणी की तुलना कोयल से करते हैं और उसे उससे भी अच्छा सिद्ध करने के लिए ऐसा बिंब निर्मित करते हैं कि प्रेमिका की मधुर वाणी सुनकर शर्म से कोयल भी गाना बंद कर देती है। इसलिए वह प्रेमिका को न गाने की सलाह देते हैं।

देख आया हूँ कभी भी नहीं मिला कोई,
गुल ही गुल जिस को मिले और मिले ख़ार नहीं[51]

इसमें त्रिलोचन गुलों और ख़ार के प्राकृतिक उपादानों के सहारे यथार्थ को ही प्रदर्शित करने का प्रयास करते हैं। प्रकृति के माध्यम से त्रिलोचन एक विरोधाभास–सा रच देते हैं, जिससे यथार्थ की विसंगति और भी स्पष्ट होकर उभरती हैः

गुल गया, गुलशन गया, बुलबुल गया फिर क्या रहा
पूछते हैं अब व' ठहरा किस जगह सैयाद था[52]

अथवा

बाग़ को आज देखते हो क्या,
अब तो पतझर यहाँ उतर आया[53]

अथवा

जो पतझर के पत्ते–सा उड़ता रहा है
कहे कौन क़िस्मत का मारा नहीं है

य' आकाश है जिसमें तारे ही तारे
मगर इसमें मेरा व' तारा नहीं है[54]

प्रकृति के सभी रंगों को त्रिलोचन समझते हैं। इसमें गर्मी का भी चित्रण वह अपनी ग़ज़ल में करते है। गर्मी का ऐसा चित्रण तो कम ही देखने को मिलता हैः

लू, लपट और बवंडर हो, जेठ तपता हो
मीठी पंचम की नहीं तान कोई कह तो दे[55]

त्रिलोचन ने 'आ गया वंसत' के रदीफ और काफ़िए से जो ग़ज़ल लिखी है वह बसंत के आगमन की सुंदर ग़ज़ल है। इस ग़ज़ल में त्रिलोचन बसंत का ऐसा चित्र बाँधते हैं कि उसकी छवि पाठक के मन में बस जाती है। बसंत के आने की सूचना देने के साथ–साथ त्रिलोचन किसान के लिए उसकी उपयोगिता पर भी बात करते हैं, क्योंकि बसंत आगमन पर किसानों की खेती यानी फसल तैयार हो जाती है। इससे पता चलता है कि वो किस तरह किसानी जीवन को भी जानते थे :

कोकिल ने गान गा के कहा आ गया बसंत
आमों ने मौर ला के कहा आ गया बसंत

हर टहनी में जीवन के नए पत्र आ गए
पीपल ने दल दिखा के कहा आ गया बसंत

खेती हुई तयार रंग की निखर चला
कुछ वायु ने समझा के कहा आ गया बसंत

तुम हो सुखी सुखी रहो मत छेड़ो दुखी को
कोयल ने यह सुना के कहा आ गया बसंत[56]

यह ग़ज़ल एक मुसलसल ग़ज़ल है। इसमें त्रिलोचन ने बसंत के आगमन से जुड़ी कई तरह की चीज़ों का चित्रा खींचा है। त्रिलोचन के प्रकृति चित्रण में भी एक सरलता है। वह सहजता से पूरे चित्र को उभार देते हैं। ''त्रिलोचन चाँद–सितारों में भटकने के बजाए खेतों, खलिहानों, जलाशयों और नदी–नालों के कल–कल प्रवाह में अधिक रमते हुए दिखाई देते हैं। उनकी कविता अति कल्पना की छलाँग लगाने के बदले यथार्थ की ज़मीन पर चलती हुई नज़र आती है।''[57]

त्रिलोचन अपने ऊपर प्रकृति के प्रभाव को स्वयं स्वीकारते हैं। वह कहते हैं कि उनका निर्माण प्रकृति से ही हुआ है। मनुष्य प्रकृति के पाँच तत्वों से मिलकर बनता है, इसलिए प्रकृति का ऋण उस पर सदैव बना रहता है उस ऋण को मनुष्य कभी नहीं उतार पाताः

क्षिति, जल, अनल, अनिल तथा आकाश हैं घेरे
किस किस से बचूँ मुझ पे सभी का उधार है[58]

इस तरह की स्वीकारोक्ति एक सहज और सरल कवि ही दे सकता है, जिसके रोम–रोम में प्रकृति बसती है। वह अपने की प्रकृति का ऋणी समझता है और प्रकृति का आभार व्यक्त करता है।

नामवर सिंह उनके प्रकृति प्रेम के संबंध में कहते हैं, ''जीवन के प्रेमी त्रिलोचन प्रकृति में भी जीवन ही देखते हैं, बल्कि प्रकृति में उनकी दृष्टि वहीं जाती है जहाँ जीवन दिखता है। वस्तुतः त्रिलोचन के काव्य का एक बड़ा भाग जीवन का महोत्सव है।''[59] त्रिलोचन के यहाँ प्रकृति का जो चित्रण दिखाई पड़ता है, उसमें गाँव की झलक मिलती है। उसमें लोकजीवन घुला हुआ है। त्रिलोचन अपने को गाँव का ही कवि समझते थे इसलिए उनकी ग़ज़लों में उसका चित्रण होना स्वाभाविक ही हैः

बहुत दिन बाद कोयल पास आकर आज बोली है
पवन ने आ के धीरे से कली की गाँठ खोली है

लगी है कैरियाँ आमों में, महुओं के लिए कूचे
गुलाबों ने कहा हँस के हवा से अब तो होली है

बधाई देके, फागुन से कहा ऋतुराज ने देखो
नए फूलों के जीवन से भरी यह अपनी झोली है[60]

उनके इस प्रकृति वर्णन के संदर्भ में मैनेजर पांडे कहते हैं, 'ऋतुओं के बदलने के साथ किसानों का जीवन–क्रम बदलता है। त्रिलोचन ने विभिन्न ऋतुओं में बदलते किसान–जीवन का चित्रण किया है। उन्हें वर्षा और बसंत विशेष प्रिय हैं। एक से किसानों को जीवन मिलता है और दूसरे से जीवंतता मिलती है।''[61]

इस तरह त्रिलोचन की प्रकृति विषयक ग़ज़लों में भी यथार्थता के चित्र देखने को मिलते हैं। इस बारे में डॉ. सुरेश गौतम लिखते हैं, ''इन ग़ज़लों का प्रमुख आकर्षण इसमें अंकित जनपदीय अनुभवों, विश्वासों और संस्कारों का चित्रण है। आम, बसंत, मंदिर, फागुन, ऋतुराज, मेघ, कोंपल, कोयल की पंचम तान जैसे शब्द, जिनका उर्दू ग़ज़ल में प्रयोग लगभग नहीं होता है, त्रिलोचन की ग़ज़लों में पर्याप्त हैं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि ये शब्द मात्र प्रयोग भर के लिए नहीं हैं अपितु उस जीवन की सच्चाई को व्यक्त करते हैं, जिसका हमारे संस्कारों से गहरा संबंध है। इसके अतिरिक्त इसमें हिंदी की उस परंपरा से जुड़ने का भी प्रयास है, जिसमें हिंदी कविता का संसार बनता है। अतः यह अकारण ही नहीं है कि त्रिलोचन ने बसंत के आगमन पर एक पूरी ग़ज़ल ही लिखी है। वे लोकजीवन से जुड़ने के लिए बसंत के आगमन की उस घटना का चित्रण करते हैं जिसमें प्रकृति, समाज और व्यक्ति उसका स्वागत करते हैं, कोयल आती है। आमों में बौर आते हैं, हवा में बदलाव आती है, टहनियों में नए पत्ते आते हैं और गाँवों, चौपालों पर ढोल–मंजीरे के साथ उसका अभिनंदन किया जाता है।''[62]

शमशेर की ग़ज़लों में प्रकृति एक अलग तरह से तथा अलग रूप में व्यंजित होती है। दरअसल शमशेर कि ग़ज़लों में प्रकृति, प्रेम और सौंदर्य आपस में इतने गुंथे हुए हैं कि इन्हें अलग कर पाना मुमकिन नहीं है। शमशेर त्रिलोचन की तरह प्रकृति का सीधा–सादा चित्रण नहीं करते। वह प्रकृति चित्रण में अपनी कल्पना, अपने भावों का समावेश करने के उपरांत उसे अभिव्यक्त करते हैं। शमशेर के यहाँ प्रेम और प्रकृति एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। शमशेर जैसे प्रेम की अनुभूति करते हैं, वैसे ही वह प्रकृति

की अनुभूति करते हैं। इसके उपरांत वह प्रकृति के चित्र को चित्रकार की भाँति कैनवस पर उकेरते हैं तथा उसमें अपने मनोभावों की कूंची से कल्पना के रंग भरते हैं। इसके बावजूद वह प्रकृति चित्रण को परंपरागत रूढ़ियों से आगे लाकर समकालीनता के बोध से भी जोड़ते हैं।

उस आस्ताँ तक हमको बहारों में ले के जाओ
जिस पर कोई शहीद हुआ हो शबाब में।[63]

शमशेर की ग़ज़लों में प्रकृति के साथ–साथ प्रेम और सौंदर्य का भी चित्रण हुआ है। वह बहार को हुस्न से जोड़कर देखते हैं। और उसमें अपनी कल्पना का रंग भरते हैं:

आई बहार हुस्न का ख़ाबे–गराँ लिए हुए
मेरे चमन को क्या हुआ, जो कोई गुल खिला नहीं[64]

प्रकृति चित्रण में शमशेर की अपनी मौलिकता है, जिसमें उनकी अनुभूति की सघनता और भावों का मेल होता है। वह प्रकृति के एकदम अछूते सौंदर्य का वर्णन करते हैं और उसमें स्वयं को इतना डुबो देते हैं कि वह कभी उदास तो कभी प्रसन्न हो जाते हैं।

साहित्य पे वो लहरों का शोर, लहरों में वो कुछ दूर की गूँज
कल आपके पहलू में जो था, होता है निढाल एकाएक

जब बादलों में धुल गई थी कुछ चाँदनी–सी शाम के बाद
क्यों आया मुझे याद अपना वह माहे–जमाल एकाएक

सीनों में क़यामत की हूक, आँखों में क़यामत की शाम
दो हिज्र की उम्रें हो गईं दो पल का विसाल एकाएक[65]

शाम, चाँदनी इनका प्रयोग शमशेर ने कविताओं की तरह अपनी ग़ज़लों में भी किया है। यह शाम, यह चाँदनी पूरे संसार को अपने आगोश में ले लेती है। इसमें एक प्रकार का जादू–सा है। साथ ही इसमें एक प्रकार की शांति का भी अनुभव होता है जो शमशेर को आकृष्ट करती है। यह चाँदनी चाँद से आती है, वह बादलों में घिर भी जाए तो शमशेर उसे पहचान लेते हैं, प्रेमिका के मुखड़े की तरहः

उसे बदलियों में भी पहचान लोगे
कि उस चाँद–से मुँह में हाला पड़ा है

य' बादल की लट चाँद पर है, कि मन को
दबाए हुए कौड़ियाला पड़ा है[66]

शमशेर प्रकृति चित्रण में यथार्थ बोध को भी जगह देते हैं। वह प्रकृति के माध्यम से यथार्थ की सच्चाई से अवगत कराते हैं। उनके प्रकृति चित्रण में उनकी प्रगतिवादी चेतना भी कार्य करती है, परंतु वह ग़ज़ल की विधा को ध्यान में रखकर सपाटबयानी से बचते हुए सांकेतिकता का सहारा लेते हैंः

है चमन की बहार ही गुलचीं
ए कली दिल की, इस क़दर मत झूम

फिर फ़िज़ाओं को होश आने लगा
फिर उठी इक सदा–ए–नामालूम[67]

बकौल रंजना अरगड़े, ''शमशेर प्रकृति के उन्मुक्त चित्रकार नहीं हैं, क्योंकि प्रकृति उनकी कविताओं में अधिकतर उनके मूड्स के अनुसार अपना सौंदर्य खोलती है। शाम उनका प्रिय विषय है। शाम उनकी रचना–विश्व का आत्मीय क्षण है और अपने परम आत्मीय क्षण में वह उदास होते हैं।''[68]

यह बात सही है कि शमशेर की ग़ज़लें मूड के अनुसार अपना सौंदर्य खोलती हैं, उनका प्रिय विषय शाम है जो उनका आत्मीय क्षण है। परंतु यह कहना ग़लत होगा कि वह प्रकृति के उन्मुक्त चित्रकार नहीं हैं। उनकी ग़ज़लों में प्रकृति का चित्रण हुआ है। उनके यहाँ प्रकृति हर रंग में मिल जाती है। उन्होंने प्रकृति का अल्हड़, शोख चित्रण भी किया है, जैसेः

गुलशन से जो इतराती आँगन में बहार आई
खुश ज़ौक़ दुल्हन उसकी शोख़ी को सँवार आई।

यह कौन निगार आया, फिर बाग़े–हज़ार आई
कलियों पे निखार आया, फूलों पे बहार आई[69]

इस तरह हम देखते हैं कि त्रिलोचन और शमशेर दोनों की ग़ज़लों में प्रकृति का चित्रण हुआ है, परंतु दोनों के प्रकृति चित्रण में अंतर देखने को मिलता है। त्रिलोचन के प्रकृति चित्रण में लोकजीवन की छटा देखने को मिलती है। उनके चित्रण में सरलता और सहजता है और काफ़ी हद तक सपाटबयानी है। उनके चित्रण में जनपदीयता का एहसास है, उन्होंने आम, कोयल, खेत, बाग़, बसंत आदि बिंबों का प्रयोग किया है, जबकि शमशेर की ग़ज़लों में कल्पना की प्रधानता है। उनमें ग़ज़ल के अनुरूप सांकेतिकता है। उनमें उनके मन की वेदना है। उनके यहाँ शाम, रात, चाँदनी, बादल, गुल आदि परंपरागत बिंबों का नए ढंग से प्रयोग हुआ है। दोनों ग़ज़लकारों की प्रकृति–चित्रण संबंधी अपनी अलग शैली है। जो उनके व्यक्तित्व से जुड़ी हुई है जो दोनों को अलग अभिव्यक्ति प्रदान करती है।

4. अन्य अभिव्यक्तियाँ

इन विषयों के अलावा त्रिलोचन और शमशेर में अन्य विषयों संबंधी अभिव्यक्तियाँ भी मिलती हैं, परंतु चूँकि प्रत्येक कवि की संवेदना का धरातल अलग–अलग होता है, इसलिए यह अभिव्यक्ति भी किसी में कम और किसी में अधिक है। यह ऐसे विषय हैं

जिनको दोनों ग़ज़लकारों ने असमान रूप से व्यक्त किया है। कई चीज़ें हैं जो दोनों ग़ज़लकारों में समान रूप से नहीं मिलतीं।

आत्मपरकता की ग़ज़लें

ये आत्मपरक ग़ज़लें शमशेर और त्रिलोचन दोनों के यहाँ ही देखने को मिलती हैं। इन ग़ज़लों में ग़ज़लकार स्वयं से ही संवाद करता है। यह आत्मपरकता अकेलेपन से उपजती है, जिसमें रचनाकार अपने एकाकीपन में किसी को साथ नहीं पाता। यह एक प्रकार की उदासी को जन्म देती है और मन में विषाद पैदा करती है। इस संदर्भ में त्रिलोचन के कुछ शेर के मिसरे दृष्टव्य हैं:

इधर सोच क्या है त्रिलोचन के जी में,
शरीर उसका पहले का आधा न देखा[70]

कच्चे ही हो अभी त्रिलोचन तुम
धुन कहाँ वह सँभल के आई है[71]

इसी प्रकार की आत्मपरकता और एकाकीपन की ग़ज़लें हमें शमशेर के यहाँ भी देखने को मिलती हैं।

जी को लगती है तेरी बात खरी है शायद
वही शमशेर मुज़फ़्फ़रनगरी है शायद[72]

बहुत ग़म सहे हमने 'शमशेर' उस पर
अभी तक ग़मों का कसाला पड़ा है[73]

त्रिलोचन और शमशेर में यह आत्मपरकता दुखों को सहने से पैदा हुई है। यह उनकी पीड़ा है जो वह अपने एकाकीपन में आत्मपरकता के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। डॉ. गोबिंद प्रसाद त्रिलोचन के बारे में लिखते हैं, ''उदासी, अवसाद, अवसन्नता

और अकेलापन उनकी कविताओं में इतना है कि बहुधा वे खुद से ही बात करते नज़र आते हैं। दुख के अतिरेक में यह स्वाभाविक है।''[74]

मृत्यु बोध की ग़ज़लें

सामान्य तौर पर मृत्युबोध की प्रवृत्ति हिंदी काव्य में छायावादी कवियों में बतौर रहस्यवादी भावना के देखने को मिलती है। यह मृत्युबोध का स्वर हमें हरिवंशराय बच्चन के काव्य में भी देखने को मिलता है। जहाँ तक प्रगतिवादी काव्य की बात है तो वहाँ जीवन के यथार्थ का ही वर्णन मिलता है। वहाँ मृत्यु नहीं अपितु जीवन संघर्ष की प्रकृति अधिक दिखाई पड़ती है। त्रिलोचन और शमशेर दोनों पर मार्क्सवाद यानी प्रगतिवाद का प्रभाव था। त्रिलोचन की ग़ज़लों में मृत्युबोध का स्वर सुनाई नहीं पड़ता है। परंतु शमशेर भिन्न प्रकृति के कवि हैं। उनकी कविता में भी और ग़ज़लों में भी हमें मृत्युबोध का यह स्वर दिखाई पड़ता है।

त्रिलोचन यथार्थवादी कवि है, उनके काव्य में जीवन संघर्ष है, जीवन की उत्कंठ आस्था है। उनके काव्य में जीवन के समस्त राग–विराग हैं। उनके काव्य में बेशक दुख है, निराशा है, उदासी है, अवसाद है, अकेलापन है परंतु इस सबके बावजूद उनमें जीवन की ललक है, उसकी सुंदरता है। उसका संघर्ष है। हर हाल में संघर्ष के बावजूद जीवन ही उनके यहाँ दिखलाई पड़ता है।

आदमी जी रहा है मरने को
सब के ऊपर यही सच्चाई है[75]

इनके यहाँ हर हाल में जीवन ही मुख्य है, उसे जीना ही है। वह स्वयं कहते हैं कि कितनी बार मैंने इस जीवन को झुठलाया है, परंतु जीवन ही सत्य है और हर हाल में जीवन ही हैः

ये जीवन भी क्या है, कभी कुछ कभी कुछ,
कहा मैंने कितना, नहीं है मगर है[76]

ऐसा नहीं है कि त्रिलोचन के यहाँ निराशा नहीं है या वह जीवन के संघर्षों से हताश नहीं होते। वह अपनी लाचारियों पर कुछ न कर पाने की इस असमर्थता पर दुखी होते हैं। वह कहते हैं:

प्राणों से अपने ऊब उठा हूँ करूँ भी क्या
लाचारियाँ भी होती हैं पछता गया हूँ मैं[77]

परंतु जीवन में कितनी भी लाचारियाँ क्यों न हों, बेबसी क्यों न हो तब भी मृत्यु की बात सोचना उन्हें ठीक नहीं लगता। वह सोचते हैं कि जो लोग मृत्यु को गले लगाते हैं, उनके जीवन में कैसी बेबसी होती होगी। वह कैसी स्थिति होगी जब कोई आत्महत्या करता है।

कैसी जीवन की बेबसी है सोचता हूँ मैं
जब कोई मृत्यु को बढ़कर गले लगाता है[78]

उनके यहाँ मृत्यु से घबराहट नहीं है। वह मृत्यु से भली–भाँति परिचित हैं, उसे जानते हैं, पहचानते हैं, परंतु उससे किसी भी प्रकार से अपने जीवन की गति में अवरोध पैदा नहीं होने देते। मृत्यु से भय उनके यहाँ नहीं है। वह तो जन्म से ही उससे परिचित हैं। यह उस आम व्यक्ति की तरह ही है जो अभावों, असुरक्षा में रोज़ ही केवल अपने जीवट के सहारे जीवन काटता है:

जन्म के दिन से कभी पास और कभी दूर,
मृत्यु को देखा है और देख कर पहचाना है[79]

इस प्रकार त्रिलोचन के यहाँ मृत्यु से भय नहीं है। वह मृत्यु से भी परिचित हैं। साथ ही वह जीवन को और उसके राग–विराग, उसके संघर्षों से भी परिचित हैं, वह हर हाल में जीवन के पक्ष में हैं, वह जीवन के सुख–दुख, राग–विराग के कवि हैं, उनके यहाँ मृत्युबोध का स्वर उस प्रकार का नहीं है। वह मृत्यु को सच्चाई की तरह

स्वीकारते हैं और जीवन पर अटल विश्वास रखते हैं, उसकी गति पर विश्वास करते हैं। वह जीवन की ख़ुशहाली के प्रयास के लिए प्रयत्नशील हैं।

शमशेर के यहाँ मृत्युबोध का स्वर दिखाई देता है, परंतु वह मृत्यु का गौरवगान नहीं करते हैं। यह उनकी रागात्मक प्रवृत्ति ही है। यह राग उन्हें जीवन और मृत्यु दोनों से जोड़ता है। यह अनायास ही नहीं है कि उन्होंने ''जो युग रुदन का नहीं था, उसमें भी शमशेर ने मित्रो, स्नेहियों, कवियों, कलाकारों की मृत्यु पर जितनी कविताएँ लिखीं, उतनी किसी आधुनिक कवि ने नहीं। उन्हें जब भी किसी घटना, विचार, संबंध, रूप या अनुभूति ने भीतर तक छुआ है–वह उनकी कविता में उतर आई है।''[80] दरअसल यह उनकी रागात्मक प्रवृत्ति का ही प्रतिफल है, जो उन्हें जीवन के साथ मृत्यु से भी जोड़ता है।

सौ बार उम्र पाऊँ तो सौ बार जान दूँ
सदक़े हूँ अपनी मौत पे काफ़िर नहीं हूँ मैं[81]

शमशेर के यहाँ मृत्युबोध अवश्य है परंतु इस मृत्यु से भय उनके यहाँ भी नहीं मिलता है। उनकी ग़ज़लों में मृत्यु उनकी प्रेमिका की तरह लगती है। वह उसका वर्णन प्रेमिका के जैसा करते हैं। जैसे प्रेमिका से मिलने पर दिल धड़कने लगता है, वैसे ही कुछ उन्होंने मृत्यु का वर्णन किया हैः

जब मौत की राहों में दिल ज़ोरों से धड़कने लगता
धड़कन को सुलाने लगती उस शोख़ की चाल एकाएक[82]

उनके यहाँ मृत्यु की प्रतीक्षा है, जैसे कि कोई प्रेमी किसी प्रेमी की प्रतीक्षा करता है। वह मृत्यु से वैसे ही शोखी से भरे वार्तालाप करते हैं, जैसे प्रेमिका से। उनके यहाँ प्रेम की पीड़ा है और वही पीड़ा मृत्यु में भी दिखाई देती हैः

हो चुकी जब ख़त्म अपनी ज़िंदगी की दास्ताँ
उनकी फरमाइश हुई है, इसको दोबारा कहें![83]

उनके यहाँ मृत्युबोध परंपरागत उर्दू शायरी के रंग में ही डूबा हुआ है जिसके द्वारा वह प्रेमिका से शिकवे–शिकायते करते हैं, उसे उलाहना देते हैं, यह मृत्यु भी उनके यहाँ प्रेम को व्यक्त करने का माध्यम ही है:

देखकर आख़ीर वक़्त उनकी मुहब्बत की नज़र
हमको याद आया वो कुछ कहना जिसे शिकवा कहें।[84]

यह मृत्युबोध जहाँ उन्हें उर्दू की परंपरागत शायरी से जोड़ता है, वहीं यह उन्हें सूफी शायरों जैसा मिज़ाज भी देता है, जिसमें वह अपनी हस्ती को मिटाना चाहते हैं और महबूब से मिलना चाहते हैं। इस संदर्भ में गोबिंद प्रसाद लिखते हैं, ''यह क्षण अर्थात मिटने वाला क्षण अनस्तित्व का क्षण है। मिटने की आरजू उन्हें सूफी शायरों की–सी यातना और हस्ती को फ़ना कर देने की तीव्रतम उन्माद की ओर भी ले जाती है। इसलिए उनके काव्य में तुम और मैं अथवा व्यक्ति सत्ता और विराट के बीच प्रायः तनाव नहीं है। क्योंकि शमशेर के यहाँ मिटने–तड़पने की आरजू बहुत है।''[85]

शमशेर में मिटने या मर मिटने की रागात्मक प्रवृत्ति, जिसमें उनकी प्रेम की भावना निहित है, इसी कारण संभव है। वह इस मर मिटने में ज़िंदगी की सत्ता को कहीं नहीं नकारते, इस जीवन के उत्सव पर भी उनका ध्यान है, जिसकी वजह से जीवन संचारित है। वह निरंतर बह रहा है–वह यह भी समझते हैं कि इस जीवन के उत्सव को बनाए रखने के लिए मिटना यानी संघर्ष करना आवश्यक है:

मैं कई बार मिट चुका हूँगा
वर्ना इस ज़िंदगी की इतनी धूम।[86]

शमशेर के इस मृत्युबोध के संदर्भ में नामवर सिंह कहते हैं कि उनका ''यह अस्तित्ववादी 'मृत्युबोध नहीं है न ही 'मरण सुंदर बन जायरी' की रोमांटिक कल्पना! शमशेर के लिए मृत्यु ख़याल नहीं, हकीकत है। प्रेम की तीव्र अनुभूति के क्षण में भी

साक्षात उपस्थिति। कीट्स की कविताओं की तरह। प्रेम और मृत्यु। आजू–बाजू। साथ–साथ।''[87]

इस प्रकार हम देखते हैं कि त्रिलोचन और शमशेर के मृत्युबोध में कितना फ़र्क है। त्रिलोचन के यहाँ मृत्यु से ज्यादा जीवन की उत्कंठा है, उसके राग–विराग है, उसके संघर्ष है। वह किसी भी प्रकार से जीवन से विमुख नहीं हैं। उन्हें मत्यु का भय नहीं है, वह उससे परिचित हैं। इसके बावजूद वह जीवन की तरंग से ही संचारित हैं। जबकि शमशेर के यहाँ मृत्युबोध का स्वर कहीं अधिक सुनाई पड़ता है, परंतु वह भी जीवन की उत्कंठ आस्था के साथ, सूफ़ी साधकों की प्रेम की भावना के जैसा है। उनके यहाँ मृत्यु उनकी प्रेमिका की तरह है, जिसका वह उस रूप में गौरवगान तो नहीं करते परंतु प्रेमिका की तरह उसकी प्रतीक्षा अवश्य करते हैं। इसमें कहीं वह 'ज़िंदगी की धूम' को नहीं भूलते हैं।

व्यंग्य की ग़ज़लें

त्रिलोचन और शमशेर दोनों की ही ग़ज़लों में व्यंग्य दिखाई पड़ता है। यह व्यंग्य सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक सभी विसंगतियों को लेकर है। व्यंग्य शमशेर की तुलना में त्रिलोचन की ग़ज़लों में अधिक दिखाई पड़ता है। वह अधिक तीखे रूप में समाज की विसंगतियों पर कटाक्ष करते हैं:

मन मिला तो मिल गए और मन हटा तो हट गए
मन की इन मौजों प' कोई भी नहीं मतवाद था[88]

लोगों का मिलना–जुलना मन पर निर्भर करता है। उन्हें किसी से कुछ लेना–देना नहीं है। वह बताते हैं कि आजकल झूठी प्रशंसा के ढोंग होते हैं। इसमें सब झूठ होता है, कुछ भी सच्चा नहीं होता:

आजकल अभिनंदनों की धूम है
किंतु सच्चा एक अभिनंदन नहीं[89]

वह सामाजिक परिस्थितियों और राजनीतिक तबकों पर तो तीखा प्रहार करते है। उनके ढकोसलों को खोलकर रख देते हैं।

बात दुखियों की कौन है जो यहाँ सुनता है
कहते हैं वह कि हंस मोती नहीं चुनता है।[90]

वह राजनीतिज्ञों पर भी व्यंग्य करते हैं कि वह आजकल लोगों को जनता को ख़ुशहाल करके उन्हें बसाने का काम नहीं करते बल्कि उन्हें उजाड़ने का कार्य करते हैं:

अब बसाते नहीं उजाड़ते हैं
कहते हैं इस से नाम होता है[91]

त्रिलोचन ने अपनी ग़ज़लों के माध्यम में सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था पर चोट की है। उनके व्यंग्य तीखे होते हैं, जो भीतर तक टीस पैदा करते हैं और जनता के अंदर ऐसी व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह पैदा करते हैं। त्रिलोचन के व्यंग्य के विषय में डॉ. भगवान सिंह कहते हैं, ''त्रिलोचन की सबसे अनूठी चीज है उनका व्यंग्य। यह गहरी पीड़ा से उठने वाला व्यंग्य है, जो कहीं तो कबीर का तेवर लेकर उभारता है और कहीं गालिब का।...जो हज़ार अभावों के बीच भी आदमी को सँभाले रहता है और आगे बढ़ने का साहस देता है।''[92]

शमशेर ने हालांकि प्रेम की ग़ज़लें अधिक लिखी हैं। साथ ही उन्होंने इस सामाजिक व्यवस्था पर भी चोट की है। उन्होंने भी अपनी ग़ज़लों में व्यंग्य का भरपूर प्रयोग किया है। उनके व्यंग्य में भी धार दिखाई पड़ती है। दरअसल यह व्यंग्य पूरी प्रगतिशील कविता की जान रहा है जो शमशेर के यहाँ भी दिखाई पड़ता है। वह धार्मिक ढकोसलों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं:

शोर भजन औ' कीर्तन का है या फिल्मी धुनों का हंगामा
सर पे हि लाउडस्पीकर की टेढ़ी छतरी क्यों बाक़ी है[93]

शमशेर आज के आधुनिक चलन पर भी व्यंग्य करते हैं, जहाँ पर बातें गोलमोल की जाती हैं। एक नए तरह का लहज़ा आज के 'तथाकथित' आधुनिक लोगों का हो गया है, जिसमें बनावटीपन अधिक है और सच्चाई बिलकुल नहीं है।

बातों में अपने रंग ला, लहज़े को शोख़तर बना
शर्तों को लोचदार रख, वादों को गोलमोल कर[94]

यह सारे तरीके आज के राजनीतिक लोगों के साथ–साथ तथाकथित आधुनिक लोगों ने भी सीख लिए हैं जिसमें 'लचीलेपन' के नाम पर कुछ भी साफ़–साफ़ नहीं कहा जाता है। पूँजीवादी मुनाफाखोर भी यही तरीका अपनाते हैं। तरक्कीपसंद विचारों को आजकल कोई जगह नहीं दी जाती। राजनीतिक लोग हमारे विचारों को नगण्य समझते हैं, जबकि उनके विचारों का अहमियत दी जाती है।

विचार अपने जो हैं घास–फूस तिनका हैं
ख़याल आपका है मोतियों–पिरोया हुआ[95]

त्रिलोचन और शमशेर दोनों के ही यहाँ इस व्यंग्य की धार बहुत तेज़ है, व्यंग्य को वह एक हथियार के तौर पर प्रयोग में लाते हैं, जिसकी मारक क्षमता अत्यधिक है, जिसके वार से बच पाना कठिन है। इन व्यंग्यों का असर गहरा और देर तक प्रभावी होता है।

सामान्य मनोदशाएँ

त्रिलोचन और शमशेर की सामान्य मनस्थितियों में हमें उनके उन मनोभावों को देखना होगा, जिनमें रहकर उन्होंने ग़ज़लें लिखीं या जो मनोभाव हमें उनकी ग़ज़लों में यत्र–तत्र दिखाई पड़ते हैं। जैसे– उदासी, रूमानियत, चिंतामग्न स्थिति बेचैनी आदि यह सब वह भाव हैं जो उनकी ग़ज़लों में दिखाई पड़ती हैं।

त्रिलोचन की ग़ज़लों में हमें अभाव और उदासी ज्यादा मुखर रूप से दिखाई पड़ती है। यह अभाव और उदासी उनके यहाँ आर्थिक तंगी से उपजी हुई है। साथ ही उपेक्षा के भाव से, जो उनके प्रति रहा है। उससे भी यह उदासी उनके अंदर घर कर गई है जो उनकी ग़ज़लों में दिखती है।

हाल पतला है मेरा तुम से बताऊँ तो क्या
दुख पुराना है नई बात सुनाऊँ तो क्या

अपने चिथड़े समेट के बग़ल में रख छोड़े
यह दिखाने की नहीं चीज़ दिखाऊँ तो क्या[96]

शमशेर के यहाँ यह उदासी दिखाई तो दोती है परंतु वह उदासी अभाव के कारण कम बल्कि प्रेम के कारण अधिक दिखाई देती है। उसमें अकेलापन है जो किसी प्रेमी के न होने से पैदा हुआ हैः

अपने दिल का हाल यारों हम किसी से क्या कहें
कोई भी नहीं मिलता जिसे अपना कहें[97]

मेरे दिल में रातों में यह तुझ बगैर
बबूला सा रह–रह के उठता है क्यों[98]

त्रिलोचन और शमशेर दोनों के यहाँ उदासी है परंतु दोनों के यहाँ यह उदासी यह बेचैनी अलग–अलग कारणों से है। त्रिलोचन अभाव, उपेक्षा, आर्थिक तंगी से ग्रस्त रहे हैं, जिससे उनकी ग़ज़लों में यह उदासी उत्पन्न होती है, जबकि शमशेर के यहाँ यह उदासी अभाव या आर्थिक तंगी की नहीं अपितु प्रेमिका की कमी की उदासी है।

त्रिलोचन के यहाँ गफ़लत और रूमानियत का भाव उस तरह का नहीं मिलता जिस प्रकार का शमशेर का है। त्रिलोचन तो हर हाल में यथार्थ की धरती पर खड़े रहते हैं। वह बेखुदी या ग़फ़लत के भाव में कम ही विचरण करते हैं।

आजकल क्या कुछ इधर मेरे हृदय को हो गया
चुप ही है, अब उसे रोना है क्या गाना है क्या[99]

क्या है, सोया हूँ या जगा हूँ मैं,
छाप शायद है अभी टोने की[100]

परंतु शमशेर के यहाँ यह ग़फ़लत, बेखुदी व रोमानियत की स्थिति काफ़ी मिलती है। वह इस रूमानियत और बेखुदी में डूबे रहते हैं। उनमें उससे उत्पन्न भटकाव भी दिखाई देता है।

झटका हुआ–सा फिरता है दिल किसी ख़याल में
क्या जादए–वफ़ा का मुसाफिर नहीं हूँ मैं?

क्या वसवसा है पा के भी तुझको यकीं नहीं
मैं हूँ जहाँ वहीं भी तो आख़िर नहीं हूँ मैं।[101]

वह इस रूमानियत की स्थिति में बने रहते हैं, वह इसमें खोए रहते हैं:

ये कैसे कवि का बग़ीचा है खोया–खोया हुआ
दिलो दिमाग़ है सपनों में, दर्द सोया हुआ

हम अपने शहर के बाज़ार ही में खोए गए
किसी को भी न मिला अपना आपा खोया हुआ[102]

शमशेर के यहाँ पर ग़फ़लत, रूमानियत और बेखुदी का आलम त्रिलोचन की अपेक्षा कहीं अधिक हैं। शमशेर के यहाँ यह रूमानियत कुछ उर्दू की शायरी की बदौलत है तथा कुछ स्वयं की उनकी रूमानी प्रकृति की देन है।

त्रिलोचन और शमशेर की संवेदना का धरातल जहाँ उनकी तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिवेश एक होने के कारण काफी हद तक साम्य

रखता है, वहीं उनकी निजी संवेदना व प्रवृत्ति के कारण उसमें काफ़ी हद तक भिन्नताएं भी विद्यमान हैं।

त्रिलोचन की ग़ज़लें सरल, सहज हैं। उनकी संवेदना का धरातल मानवीय पीड़ा से जुड़ा हुआ है। उसमें जीवन का संघर्ष निहित है, उसमें प्रेम भी है, प्रकृति भी है, मानवीय राग–विराग भी है। साथ ही उसमें राजनीतिक, सामाजिक विषमताओं से उपजी पीड़ा भी है। वह जीवन के संघर्ष और उसकी आस्था के ग़ज़लकार हैं। ''जीवन का प्रेम त्रिलोचन पर नशे की तरह सवार रहा है, जिसमें उन्होंने अभाव को अभाव और दुख को दुख नहीं समझा। उन्होंने निरंतर संघर्ष में ही दिन बिताए हैं और कवि के रूप में लोगों में जीवन के प्रति आस्था जगाते तथा उन्हें सौंदर्य से परिचित कराते रहे हैं।''[103] उनकी संवेदना का स्वरूप इन्हीं अभावों, दुख–दर्दों, निरंतर संघर्षों और जीवन के सौंदर्य से निर्मित हुआ है।

शमशेर स्वयं को मूलतः रूमानी कवि स्वीकारते हैं परंतु वह यथार्थ के धरातल पर ही रूमानियत को अभिव्यक्त करते हैं। वह अपनी रूमानियत में सच्चाई को नहीं झुठलाते। वह कहते हैं, ''सुंदरता का अवतार हमारे सामने पल छिन होता रहता है। अब यह हम पर है, ख़ास तौर से कवियों पर कि हम अपने चारों ओर की इस अनंत अपार लीला को कितना अपने अंदर घुला सकते हैं। इसका सीधा मतलब हुआ अपने चारों तरफ़ की ज़िंदगी में दिलचस्पी लेना, उसी की ठीक–ठाक यानी वैज्ञानिक आधार पर (मेरे नज़दीक यह वैज्ञानिक आधार मार्क्सवाद है) समझना और अपने अनुभव को इसी समझ और जानकारी से सुलझाकर स्पष्ट करके अपनी कला भावना को जगाना।''[104] शमशेर जानते हैं कि एक रचनाकार का दायित्व क्या है। फिर भी उनके काव्य में एक प्रकार द्वंद्व दिखाई पड़ता है। इसमें स्वप्न और यर्थाथ का द्वंद्व, प्रेम और मृत्यु का द्वंद्व, स्वप्न और सौंदर्य का द्वंद्व है। यह द्वंद्व ही है, जो उनके काव्य को संचालित करता है। और मार्क्सवाद के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद से शमशेर का यह द्वंद्व और भी स्पष्ट व संयमित रूप में उनके काव्य और ग़ज़लों में उभरा है।

शमशेर की ग़ज़लों जो मूल भावना या संवेदना है, वह पीड़ा या दर्द की है। उनकी ग़ज़लों में वेदना, तड़प, दर्द हर जगह देखने को मिलता है। चाहे वह समाज की देन हो, चाहे प्रेम की देन, क्योंकि दर्द कभी बिना वज़ह नहीं होता है। यह परिस्थितियों के परिणामस्वरूप ही उत्पन्न होता है। इसी दर्द से शमशेर अपनी ग़ज़लों की संवेदना का स्वरूप ग्रहण करते हैं।

संदर्भ सूची

[1] शमशेर, **कुछ और कविताएं**, पृ.

[2] डॉ. राजेंद्र प्रसाद, **अज्ञेय : कवि और काव्य**, पृ.96

[3] न्गुगी वा थ्योंगो, **साहित्य और समाज, भाषा संस्कृति और राष्ट्रीय अस्मिता,** पृ.48–49

[4] गोबिंद प्रसाद, **त्रिलोचन के बारे में**, पृ.41

[5] त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल**, पृ.80

[6] वही, पृ.22

[7]नंदकिशोर नवल, **शब्द जहाँ सक्रिय हैं**, पृ.52–53

[8] त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल**, पृ.17

[9] वही, पृ.17

[10] वही, पृ.122

[11] वही, पृ.98

[12] वही, पृ.19

[13] रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **सुकून की तलाश,** पृ.21

[14] डॉ. वीरेंद्र सिंह, **बिंबों से झाँकता कविःशमशेर**, पृ.82

[15] रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **सुकून की तलाश,** पृ.20

[16] वही, पृ.43

[17] वही, पृ.14

[18] वही, पृ.22

[19] वही, पृ.26

[20] वही, पृ.21

[21] शमशेर बहादुर सिंह, **उदिताः अभिव्यक्ति का संघर्ष**, पृ.6

[22] त्रिलोचन,**गुलाब और बुलबुल**, पृ.22

[23] वही, पृ.73

[24] वही, पृ.28–29

[25] डॉ.गोबिंद प्रसाद, **कविता के सम्मुख**, पृ.109

[26] त्रिलोचन,**गुलाब और बुलबुल**, पृ.103

[27] वही, पृ.102

[28] वही, पृ.43

[29] वही, पृ.63

[30] वही, पृ.66

[31] डॉ,गोबिंद प्रसाद, **कविता के सम्मुख**, पृ.104

[32] डॉ. वीरेंद्र सिंह, **बिंबों से झाँकता कवि : शमशेर**, पृ.47

[33] रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **सुकून की तलाश,** पृ.39

[34] शमशेर बहादुर सिंह, **उदिताः अभिव्यक्ति का संघर्ष,** पृ.109

[35] रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **सुकून की तलाश**, पृ.40

[36] वही, पृ.40

[37] वही, पृ.33

[38] वही, पृ.33

[39] वही, पृ.33

[40] वही, पृ.36

[41] रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **सुकून की तलाश**, पृ.84

[42] वही**,** पृ.84

[43] वही, पृ.85

[44] वही, पृ.85

[45] जीवन प्रकाश जोशी, **त्रिलोचन की कविता–यात्रा**, पृ.13

[46] वही, पृ.13

[47] प्रभाकर श्रोत्रिय, **शमशेर बहादुर सिंहः भारतीय साहित्य के निर्माता**, पृ.47

[48] सरदार मुजावर (सं.), माहेश्वर तिवारी, **हिंदी ग़ज़ल की नई दिशाएँ**, पृ. 24

[49] नंदकिशोर नवल, **शब्द जहाँ सक्रिय हैं,** पृ.56

[50] त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल,** पृ.18

[51] वही**,** पृ.19

[52] वही, पृ.24

[53] वही, पृ.38

[54] वही, पृ.30

[55] वही, पृ.34

[56] वही, पृ.56

[57] **सापेक्ष**, अंक, 38, जुलाई–दिसंबर, 1997 से उद्धृत, पृ. 583

[58] त्रिलोचन,**गुलाब और बुलबुल**, पृ.66

[59] गोबिंद प्रसाद (सं.), **त्रिलोचन के बारे में**, पृ.85

[60] त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल**, पृ.88

[61] गोबिंद प्रसाद (सं.), **त्रिलोचन के बारे में**, पृ.153

[62] डॉ. सुरेश गौतम, **अंतर्गवाक्षः प्रगतिवादी काव्य पुनर्मल्यांकन**, पृ.78

[63] रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **सुकून की तलाश,** पृ.17

[64] वही, पृ.19

[65] वही**,** पृ.22

[66] वही, पृ.25

[67] वही, पृ.41

[68] रंजना अरगड़े, **कवियों का कवि शमशेर**, पृ.25

[69] रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **सुकून की तलाश,** पृ.108

[70] त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल,** पृ.59

[71] वही**,** पृ.29

[72] रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **सुकून की तलाश,** पृ.103

[73] वही, पृ.25

[74] गोबिंद प्रसाद (सं.), **त्रिलोचन के बारे में**, पृ.22

[75] त्रिलोचन, गुलाब और बुलबुल, पृ.29

[76] वही, पृ.64

[77] वही, पृ.80

[78] वही, पृ.125

[79] वही, पृ.95

[80] प्रभाकर श्रोत्रिय, **भारतीय साहित्य के निर्माता शमशेर बहादुर सिंह**, पृ.52

[81] रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **सुकून की तलाश,** पृ.13

[82] वही, पृ.22

[83] वही, पृ.14

[84] वही, पृ.14

[85] गोबिंद प्रसाद, **कविता के सम्मुख**, पृ.46

[86] रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **सुकून की तलाश,** पृ.42

[87] नामवर सिंह (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **प्रतिनिधि कविताएँ**, पृ.7

[88] त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल**, पृ.24

[89] वही, पृ.26

[90] वही, पृ.36

[91] वही, पृ.63

[92] गोबिंद प्रसाद (सं.), **त्रिलोचन के बारे में**, पृ.143

[93] रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **सुकून की तलाश,** पृ.35

[94] वही, पृ.38

[95] वही, पृ.28

[96] त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल,** पृ.85

[97] रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **सुकून की तलाश,** पृ.14

[98] वही, पृ.31

[99] त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल**, पृ.17

[100] वही, पृ.41

[101] रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **सुकून की तलाश,** पृ.13

[102] वही, पृ.28

[103] नंद किशोर नवल, **शब्द यहाँ सक्रिय हैं,** पृ.52

[104] डॉ. रंजना अरगड़े, **कवियों का कवि शमशेर**, पृ.133

□ चौथा अध्याय

त्रिलोचन और शमशेर की ग़ज़लों का शिल्प–सौंदर्य

किसी सार्थक रचना का निर्माण अंतर्वस्तु और शिल्प के सही मेल द्वारा होता है। अंतर्वस्तु और शिल्प के बीच द्वंद्वात्मक संबंध होता है। शिल्प अंतर्वस्तु को और अंतर्वस्तु शिल्प को अर्थवत्ता प्रदान करती है। ऐसी रचना जिसमें अंतर्वस्तु शिल्प में और शिल्प अंतर्वस्तु में बाधा पहुँचाए, कमजोर रचना कहलाती है। अंतर्वस्तु और शिल्प एक–दूसरे से जुड़े होते हैं, इन्हें अलग नहीं किया जा सकता। इस संदर्भ में शमशेर बहादुर सिंह ने एक साक्षात्कार में जानकी प्रसाद शर्मा को अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि ''मैं कंटेंट और फ़ॉर्म के अंतर्संबंधों को रचना की बुनियादी शर्त मानता हूँ। कंटेंट स्वयं अपनी प्रकृति के मुताबिक फॉर्म की तलाश करता है। एक सही रचनाकार बेहतर ढंग से यह जानता है कि उसे किस बात के लिए कौन–सा माध्यम चुनना है?''[1] लेखन एक सामाजिक प्रक्रिया है। शमशेर की बात से पता चलता है कि लेखक को क्या, कैसे और किसके लिए कहना है? यह मुख्य है। क्योंकि यह बात ही तय करती है कि रचना का शिल्प कैसा होगा? अंतर्वस्तु को शिल्प से अलग नहीं किया जा सकता है। क्योंकि अंतर्वस्तु को शिल्प के माध्यम से ही जाना जाता है। साथ ही शिल्प का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता क्योंकि शिल्प बिना किसी अंतर्वस्तु के अस्तित्व में ही नहीं रह सकता।

ग़ज़ल एक ऐसी विधा है जो अपने कथ्य या अंतर्वस्तु के साथ अपने शिल्प के कारण अधिक लोकप्रिय रही है। इसे इस तरह भी कह सकते हैं कि ग़ज़ल को लोकप्रिय बनाने वाला तत्व उसका शिल्प ही है। इसके शिल्प में कोमलकांत पदावली शब्दों की नफासत, अर्थसघनता और गेयता आदि का होना, इसकी कुछ ऐसी

विशेषताएँ हैं, जिन्होंने ग़ज़ल को हर ख़ासो आम में इतना लोकप्रिय बना दिया है। रामप्रसाद शर्मा 'महर्षि' कहते हैं, ''ग़ज़ल एक अनूठी विधा ही नहीं, काव्यात्मक शिल्प भी है। इसके लिए ग़ज़लकार को कल्पनाशील, सृजनशील एवं प्रतिभासंपन्न शिल्पकार होना होता है, जिसका शिल्प–सौष्ठव ऐसी ग़ज़लों का सृजन करने में सक्षम हो, जो कला की दृष्टि से अनुपम हो और शायरी की दृष्टि से आदर्श। इस विशिष्ट विधा में भाषा, भाव, व्याकरण एवं शैली सभी का समग्र रूप से समावेश हो। इसमें शिल्प का उतना ही महत्त्व है जितना कथ्य का। इनको एक जैसा सम्मान देते हुए चलना होता है। उनमें से किसी को कम करके नहीं आंका जा सकता। कथ्य के आवेश में शिल्प को कमतर करके नहीं देखा जा सकता।''[2] इसी प्रकार जर्मन आलोचक जॉर्ज लुकाच के अनुसार, ''साहित्य में अगर कोई चीज़ सचमुच सामाजिक होती है तो वह है उसका रूप (फार्म)।''[3]

इसका यह अर्थ नहीं है कि केवल शिल्प पर ही ध्यान देना चाहिए अंतर्वस्तु का कोई महत्त्व नहीं। बल्कि दोनों का समान महत्त्व है। इन दोनों का द्वंद्वात्मक संबंध है। एक के बिना दूसरा अधूरा है। रूप का तभी तक महत्त्व है, जब तक वह अपनी अंतर्वस्तु को व्यक्त करता है। अन्यथा उसका कोई महत्व नहीं है। टेरी ईगल्टन के अनुसार, ''मार्क्स ने साहित्य के रूप और अंतर्वस्तु के सवाल पर द्वंद्वात्मक नज़रिया अपनाया। उनका मत था कि साहित्य की रूप संरचना साहित्य की अंतर्वस्तु की उपज होती है लेकिन वह अंतर्वस्तु को प्रभावित भी करती है। मार्क्स ने रूपवादी नियम कायदों के बारे में 'रेनिशे जेटुंग' में साफ लिखा, 'रूप का कोई महत्त्व नहीं है जब तक कि वह अंतर्वस्तु को व्यक्त नहीं करता।''[4]

इस प्रकार हम पाते हैं कि अंतर्वस्तु और शिल्प का गहरा संबंध है। किसी रचना को कालजयी या श्रेष्ठ बनाने में उसकी अंतर्वस्तु के साथ उसके शिल्प का भी योगदान होता है। जैसाकि बताया जा चुका है कि ग़ज़ल की लोकप्रियता का कारण उसका शिल्प ही है। हालाँकि ग़ज़ल को उसके शिल्प के कारण आलोचनाओं का भी सामना करना पड़ा। विद्वानों ने 'सामंती विधा' कहकर उसकी आलोचना की। उसके शिल्प के

संबंध में भी यही मत रहा है कि यह एक सामंती विधा है। और इसका शिल्प भी सामंती है। परंतु आधुनिक समय तक ग़ज़ल विधा की अंतर्वस्तु में आए परिवर्तनों ने यह बता दिया कि किसी रचना को सफल बनाने में उसकी अंतर्वस्तु का कितना योगदान है। और यह भी साबित किया कि ग़ज़ल एक सामंती विधा नहीं है, जिसके कारण इस विधा ने आधुनिक समय में और भी ज्यादा लोकप्रियता हासिल की। इसके कथ्य यानी अंतर्वस्तु ने इसे और गंभीर बनाया तथा इसके शिल्प ने इसके सौंदर्य को और भी बढ़ाया है।

त्रिलोचन और शमशेर की ग़ज़लों को हम संवेदना के धरातल पर तो देख चुके हैं। अब हम इन दोनों ग़ज़लकारों की ग़ज़लों का शिल्प सौंदर्य देखेंगे। शिल्प के सबंध में मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि किसी कृति या रचना के निर्माण में जिन उपादानों के द्वारा काव्य या रचना का ढाँचा तैयार किया जाता है। वे सब काव्य–शिल्प के तत्त्व कहलाते हैं। इसमें शब्द–योजना, भाषा, छंद, बिंब, प्रतीक आदि तक आते हैं जिससे मिलकर किसी काव्य की रचना होती है।

त्रिलोचन और शमशेर की ग़ज़लों के शिल्प सौंदर्य को देखने के लिए हमें इनकी ग़ज़लों को इन्हीं तत्वों के आधार पर देखना होगा। त्रिलोचन और शमशेर ने अपनी ग़ज़लों में किस प्रकार की भाषा, शब्द योजना, प्रतीक, बिंब व मिथकों का प्रयोग किया है? तथा उर्दू की ग़ज़ल संरचना के अनुसार किस तरह की ग़ज़लें कहीं है? उनका शिल्प सौंदर्य किस प्रकार का है?

जब हम ग़ज़ल के शिल्प के आधार पर त्रिलोचन और शमशेर की ग़ज़लों की तुलना करते हैं तो हम पाते हैं कि ग़ज़ल के शिल्प के अनुसार त्रिलोचन की ग़ज़लों में वह बात नहीं है जो ग़ज़ल के लिए आवश्यक है। उनकी ग़ज़लों में हमें भाषा की वह लोच और वह रवानगी देखने को नहीं मिलती जो ग़ज़लों के लिए अपेक्षित है। उनकी भाषा सादी और सपाट है। शब्द रूखे और खुरदुरे हैं। उनकी ग़ज़लों में उर्दू–फारसी शायरी की तरह वह शृंगारी बिंब एवं प्रतीक देखने को नहीं मिलते जो ग़ज़ल की

पहचान हुआ करते हैं। उनकी ग़ज़लों में रूमानियत का अभाव है। उसकी जगह उनमें सादगी और खरापन है। उनमें वह अंदाज़–ए–बयां भी देखने को नहीं मिलता जो पारंपरिक ग़ज़ल की जान है। त्रिलोचन की ग़ज़लों के संबंध में डॉ. नरेश करते हैं, ''त्रिलोचन की ग़ज़लों में भाषा का लोच अनुपस्थित रहा तथा उनके शेर सपाटबयानी बन गये।''[5]

जबकि इसके विपरीत शमशेर की ग़ज़लों में हमें वह सारी बातें देखने को मिलती हैं जो ग़ज़लों के लिए अपेक्षित है। उनकी ग़ज़लों में भाषा की वह लोच और रवानगी है। जो हमें पारंपरिक ग़ज़लों में देखने को मिलती है। उनकी शायरी में उर्दू–फारसी शायरी की तरह वह शृंगारी बिंब एवं प्रतीक भी देखने को मिलते हैं। उनकी ग़ज़लों में हमें वही रूमानियत और अंदाज़–ए–बयां देखने को मिलता है जो पारंपरिक शायरी की जान है।

अब प्रश्न यह उठता है कि शमशेर की ग़ज़लों में ग़ज़ल की एक पूरी रवायत देखने को मिलती है। प्रतीक, बिंब से लेकर भाषा की लोच तथा प्रवाह तक। परंतु त्रिलोचन के यहाँ हमें यह रवायत देखने को नहीं मिलती। उनके यहाँ बिंब–प्रतीक अलग हैं और भाषा भी सपाट और उबड़खाबड़ है। जबकि स्वयं त्रिलोचन अपनी कविताओं में भाषा की लोच और सरलता को महत्व देते हैं, फिर उनकी ग़ज़लों की भाषा में इतनी दुरूहता और ऊबड़–खाबड़पन क्यों है? त्रिलोचन स्वयं उर्दू ग़ज़लों की भाषा के संदर्भ में कहते हैं, ''उर्दू ग़ज़लों में जो भाषा आती है वह बोलचाल का वह लहज़ा पकड़ती है जिसमें कविता में जीवन तत्व आता है। हिंदी में लिखने वाले बोलचाल का सौंदर्य देख ही नहीं पाते। हिंदी का वातावरण अलग है। उसको रूपायित करने के लिए वाक्यों में लोच की ज़रूरत है और इस लोच को लाने में बड़ी मशक्कत है।''[6]

इससे पता चलता है कि त्रिलोचन उर्दू ग़ज़लों की भाषा और मिज़ाज से परिचित हैं और हिंदी ग़ज़लों को भी उसके अनुकूल बनाना चाहते हैं। परंतु यह मिज़ाज स्वयं

उनकी ग़ज़लों में देखने को नहीं मिलता है। जबकि शमशेर के यहाँ हमें यह मिज़ाज देखने को मिलता है। दरअसल इसको समझने के लिए हमें गोबिंद प्रसाद के इस कथन को देखना होगा। वे लिखते हैं, '''गुलाब और बुलबुल' संग्रह की ग़ज़लें इस दृष्टि से बिलकुल अलग हैं। संवदेना और शिल्प के स्तर पर त्रिलोचन की मुख्य चिंता यह रही है कि ग़ज़ल को हिंदी के बड़े पाठक वर्ग तक किस संस्कार के अंतर्गत पहुँचाया जाए। यानी सवाल भारतीय जनमानस के सांस्कृतिक और बौद्धिक पक्ष को अक्षत रखकर उसके भाषागत संस्कार को पकड़ने–पहचानने का है। 'गुलाब और बुलबुल' संकलन की ग़ज़लें इसी संस्कार की पहचान का रचनात्मक दस्तावेज़ हैं।''[7]

इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि त्रिलोचन की ग़ज़लें हिंदी की जातीय परंपरा को ध्यान में रखकर लिखी गई हैं। उन्हें लिखते समय हिंदी संस्कार का ध्यान रखा गया है। इनमें शब्द चयन, मुहावरे, प्रतीक, बिंब सभी हिंदी की परंपरा में ढले हुए हैं। उनकी कोशिश ग़ज़लों को हिंदी के स्वभाव में ढालने की रही है। उनकी भाषा भी ठेठ हिंदी के ही रंग में रंगी हुई है। उन्होंने इसमें उर्दू–फारसी के शब्दों, प्रतीकों से बचने का प्रयास किया है। त्रिलोचन ने हिंदी ग़ज़लों को उर्दू ग़ज़लों से भिन्न एक नया रूप व भंगिमा देने का प्रयास किया है। इस संदर्भ में राजू. एम. फिलीप का कथन है, ''गुलाब और बुलबुल में त्रिलोचन शास्त्री ने रूबाइयों एवं ग़ज़लों जैसे गैर–हिंदी क्लासिकीय काव्यरूपों को अपनाया है। अपने आप में यह अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है। साथ–ही–साथ उन्होंने कई मौलिक प्रयोग भी किए हैं। एक ओर उन्होंने रूबाई और ग़ज़ल के अनुरूप अपनी लेखन शैली को ढाल लिया, वही दूसरी ओर इन काव्यरूपों को हिंदी जगत की भावभूमि के अनुकूल बनाने की दिशा में भी प्रयोग किए हैं।''[8] त्रिलोचन के यहाँ यह प्रयोग भाषा में शब्द चयन से लेकर वाक्य–विन्यास, छंद आदि तक सभी जगह देखने को मिलते हैं।

शमशेर के यहाँ यह प्रयोग कम देखने को मिलते हैं। उन्होंने हिंदी ग़ज़ल परंपरा के निर्माण के लिए ग़ज़लें नहीं कहीं अपितु उन्होंने उर्दू–फारसी की ग़ज़ल परंपरा के अनुरूप ही ग़ज़लें कहीं हैं। शमशेर की ग़ज़लों का मिज़ाज उर्दू–फारसी ग़ज़लों का है।

शमशेर की ग़ज़लों में हमें परंपरागत ग़ज़लों की भाँति भाषाई लोच, नाद और कथ्य के स्तर पर गहराई देखने को मिलती है। शमशेर की ग़ज़लें परंपरा की पाबंद जरूर है लेकिन उनमें कुछ ऐसा अनोखापन है जो उन्हें उर्दू शायरों से मुख़्तलिफ़ ग़ज़लकार के रूप में प्रस्तुत करता है। इसका कारण यह है कि शमशेर कथ्य और शिल्प में गहरा संबंध मानते हैं। वह मानते हैं कि यह दोनों एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। इसलिए शमशेर की ग़ज़ल उर्दू की परंपरागत ग़ज़ल से कुछ भिन्न रूप भी रखती है। शमशेर कहते हैं, ''कथ्य और शिल्प का परस्पर गहरा संबंध होता है। कथ्य के वैशिष्ट्य के कारण भी कविता की छंद–लय आदि प्रभावित होती है। और एक ताज़ा गति में छंदबद्ध हो जाती है। सच्चाई यह है कि वस्तुतत्व और भाषागत शिल्प अन्योन्याश्रित है। वे एक–दूसरे को प्रेरणा देते हैं। अलग से उन्हें लाकर जोड़ा नहीं जाता है।''[9]

शमशेर की ग़ज़लों की अंतर्वस्तु ने उनकी ग़ज़लों के शिल्प को परंपरागत ग़ज़ल से कुछ मुख़्तलिफ अंदाज़ दिया। परंतु यह मुख़्तलिफ अंदाज उनकी ग़ज़लों में कम ही देखने को मिलता है। भाषा की यदि बात की जाए तो उनकी ग़ज़ल की भाषा परंपरागत ग़ज़ल की ही भाषा है। उनकी ग़ज़ल का विषय भी वही परंपरागत आशिक–माशूक का ही है।

शमशेर की ग़ज़लों में भाषाई लोच दिखाई देती है। उनकी भाषा का रूप बेहद लचीला है। उन्होंने ग़ज़लों में उर्दू शब्दों का प्रयोग किया है जो उन्हें हिंदी भाषा के रूखेपन से मुक्त करता है, जिससे शायरी की कोमलता बरकरार रहती है। दरअसल उर्दू उनके लिए दैनिक बोलचाल की भाषा थी। उनके आरंभिक रचनाकाल में उनकी रचना की भाषा उर्दू थी। शमशेर की ग़ज़लों की भाषा में उर्दू के शब्दों की बहुलता है। वह उर्दू और हिंदी को अलग नहीं मानते थे। इस कारण भी उनकी ग़जलों में उर्दू के शब्द अधिक हैं। इस संबंध में डॉ. नरेश कहते हैं, ''उन्हें हिंदी की कविताएँ दो कारणों से कहा जाता है। एक तो यह कि वे नागरी लिपि में हैं। दूसरी यह कि स्वयं शमशेर इन्हें हिंदी कविताओं से भिन्न नहीं मानते।''[10] शमशेर अपनी ग़ज़लों को हिंदी की ही चीज़ मानते रहे। दरअसल शमशेर ग़ज़लों के मिज़ाज को जानते थे और उसके

अनुरूप ही भाषा का इस्तेमाल करते थे। उनके यहाँ जो भाषा प्रयोग में लायी जाती है, वह बोलचाल का लहज़ा पकड़ती है। जिससे उसमें भाव के स्तर पर लोच और सौंदर्य देखने को मिलता है।

इस भाषाई लोच और सौंदर्य को त्रिलोचन के यहाँ ढूँढ़ना बेमानी होगा। इनकी ग़ज़लों की भाषा में खुरदुरापन और वाक्यों का गठन ढीला–सा प्रतीत होता है। उनमें कहीं–कहीं लय में भी टूटन दिखाई देती है। ऐसा लगता है यथार्थ जीवन के तनाव और विसंगतियों का असर उसमें दरार पैदा कर रहा है।

दरअसल त्रिलोचन सहज रूप से किसान जीवन के कवि हैं जो कि किसानी जीवन के सामूहिक श्रम और संघर्षों के चित्रों को सहज और बेबाकी ढंग से प्रस्तुत करते हैं। बकौल डॉ. गोबिंद प्रसाद ''उसकी कविता को शब्दों का जाज़मी लिबास फ़बता नहीं। मिज़ाज की भव्यता और मीनाकारी, या नक्काशी से उसे दूर तक लेना–देना नहीं।''[11] उनके पास तो ताप के ताए हुए दिन हैं। और वैसे ही तपते हुए शब्द हैं। उनकी भाषा में सुनार जैसी कारीगरी ढूँढ़ना बेमानी है। यहाँ तो लुहार जैसा अनगढ़ शब्दों का सांचा है। उनकी ग़ज़ल में भी हमें यही देखने को मिलता है। उनकी ग़ज़लों की भाषा में रूमानियत की जगह सादगी और सहजता का सौंदर्य देखने को मिलता है। गोबिंद प्रसाद के अनुसार, 'जलेबियाँ उतारने वाली कारीगरी त्रिलोचन के यहाँ नहीं है।''[12]

जब नून तेल लकड़ी समस्या हो तब हुआ
लेकर कला को कुछ निखार कोई क्या करे[13]

त्रिलोचन ने जीवन की समस्याओं और उसके संघर्षों को वैसा का वैसा ही उतार कर रख दिया है। उनके पास कविता की भाषा का अभिजात्य नहीं है जिससे वह अपनी बात को घुमाकर कहें। बिना लाग–लपेट के बात कहना त्रिलोचन की खूबी है। उनकी इस सपाट भाषा में जीवन के संघर्ष की धार दिखायी पड़ती है। त्रिलोचन की कविता के साथ–साथ उनकी ग़ज़लों में भी जो शब्द आते हैं, वह जीवन से जुड़े हुए

होते हैं। इस संदर्भ में परमानंद श्रीवास्तव कहते हैं, ''अज्ञेय कहते रहे हों—काव्य सबसे पहले शब्द है। और सबसे अंत में भी यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द हैं—त्रिलोचन ने शब्द की सत्ता की ओखी पहचान का प्रमाण देते हुए उसमें जो जीवन भरा है, वह एक अलग ढंग की चीज़ है। शब्दों में जीवन भरने के लिए शब्दों में ही नहीं, जीवन में भी धँसने—पैठने की ज़रूरत होती है। अज्ञेय के लिए शब्द के उपयोग की सार्थकता शब्द के परिष्कार में रही है। त्रिलोचन के लिए शब्द का अर्थ है जीवन से घनिष्ठ साक्षात्कार।''[14]

त्रिलोचन जीवन में रमे हुए रचनाकार हैं। उनकी ग़ज़लें भी अपना स्त्रोत जीवन में ढूँढ़ती हैं। वह जीवन से ही ऊर्जा ग्रहण करते हैं। परमानंद श्रीवास्तव आगे कहते हैं, ''त्रिलोचन ने शब्द या वाक्य या भाषा में निहित जीवनमर्म को उद्‌घाटित करने के लिए ही जैसे कविता का माध्यम चुना हो। उन्होंने तुलसी और ग़ालिब से ही भाषा नहीं सीखी, अपने ठीक पहले के वरिष्ठ या अग्रज समकालीन कवि निराला से भी शब्दानुशासन का मर्म जाना है।''[15] दरअसल त्रिलोचन की ग़ज़लों को हमें इसी तरह देखना होगा। उन्होंने ग़ज़लें उर्दू परंपरा में नहीं हिंदी की परंपरा में कही हैं।

उनके यहाँ शब्दों में सच्चाई, नैतिकता, श्रम और संघर्ष के प्रति आग्रह, ठहराव की जगह क्रियाशीलता, आवेग की जगह संयम, रुदन की जगह भीतर ही भीतर कसकता हुआ दर्द उनके शेरों में देखने को मिलता है। त्रिलोचन की शायरी में ओज और औदात्य भी देखा जा सकता है। जहाँ पर उनकी भाषा परंपरागत ग़ज़ल की नाज़ुकी और नफ़ासत को तोड़कर नई भंगिमा अपनाती हैः

ताप का काम और है ही क्या
स्पर्श हो और हिम पिघलता है[16]

त्रिलोचन की ग़ज़लों में अभाव, दुख, पीड़ा, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विसंगतियों पर चोट आदि देखने को मिलती है। इसलिए उनकी ग़ज़लों की भाषा में एक रूखापन दिखाई देता है। उनकी अधिकतर ग़ज़लें इसी आस्वाद से भरी हुई हैं।

कुछ ग़ज़लें प्रेम विषयक भी मिलती हैं लेकिन उनमें भी दुख और पीड़ा का ही स्वर अधिक दिखाई पड़ता है।

कितने समीप थे वही कितने परे हुए
बैठे हैं आज याद में आँखें भरे हुए[17]

इसके विपरीत शमशेर की ग़ज़लों की भाषा उनके 'मूड' के अनुसार बदलती रहती है। दरअसल ग़ज़ल में जो तत्त्व विद्यमान होता है, वह 'मूड' यानि कैफ़ियत ही होता है। शमशेर के यहाँ भाषा में रवानी, लोच और लय सभी कुछ विद्यमान है। उनकी ग़ज़लों की भाषा उनकी ग़ज़ल के मूड के अनुसार बदलती रहती है। शमशेर के मूड के आधार पर भाषा को तीन रूपों में देखा जा सकता है।

पहले मूड में वह ग़ज़लें आती हैं जिनके कारण शमशेर को परंपरागत उर्दू–फारसी शायरी का शायर कहा जाता है। इन ग़ज़लों का विषय प्रेम यानी इश्क–माशूक है। इन ग़ज़लों में शमशेर की भाषा का लहज़ा विनम्रता लिए हुए है। इसमें शमशेर 'फरियाद' के मूड में दिखाई देते हैं। इन ग़ज़लों की भाषा में उर्दू ग़ज़ल की परंपरागत शब्दावली का प्रयोग देखने को मिलता है। साथ ही इनमें प्रतीक व बिंब भी परंपरागत उर्दू ग़ज़ल के ही लिए गए होते हैं।

करीबे–हुस्न को पहुँचा तो ग़म कहाँ पहुँचा
हमीं को होश नहीं, आपको तो क्योंकर हो[18]

अपनी ही क़द्रे–खुदी की पुरतक़ल्तुफ़ लज़्जते
आप क्या लेते हैं मुझसे और क्या देता हूँ मैं[19]

इन ग़ज़लों में परंपरागत उर्दू शायरी की ही रंगत दिखायी पड़ती है। यह पर भाषा की परंपरागत उर्दू शायरी की है। शमशेर की ग़ज़लों में अधिकतर यही मूड और भाषा देखने को मिलती है।

दूसरे मूड में वह ग़ज़लें आती हैं जिनमें विषय तो वही परंपरागत रहे हैं। यानी आशिक और माशूक के विषय। परन्तु इनमें शमशेर का लहज़ा व्यंग्यात्मक और थोड़ा बेफ़िक्री लिए हुए है। इन ग़ज़लों में शमशेर आधुनिक चेतना की ग़ज़ल के ज्यादा करीब दिखाई देते हैं। उनकी ग़ज़लों की भाषा उर्दू की आधुनिक ग़ज़ल की भाषा के नज़दीक दिखती है। इन ग़ज़लों में उनकी भाषा आम बोलचाल की है। यह हिंदी ग़ज़ल के लिए एक आर्दश भाषा मानी जा सकती है। इसमें उर्दू के कठिन शब्दों के बजाए दैनिक बोलचाल के शब्दों का प्रयोग अधिक देखने को मिलता है।

अपने दिल का हाल यारों, हम किसी से क्या कहें
कोई भी ऐसा नहीं मिलता जिसे अपना कहें।[20]

सुराही पड़ी है पियाला पड़ा है
करें क्या–जुबानों पे' ताला पड़ा है[21]

इन ग़ज़लों में भी परंपरागत शायरी का रंग है परंतु इनमें दैनिक बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग हुआ है।

शमशेर के यहाँ तीसरे तरह की ग़ज़लें वह मिलती हैं जिनका विषय राजनीतिक या सामाजिक है। इस तरह की ग़ज़लों में शमशेर जिस भाषा का प्रयोग करते हैं, वह आधुनिक हिंदी ग़ज़ल की ही भाषा है। इसमें शमशेर ने आधुनिक समय के बिम्ब और प्रतीकों का ही प्रयोग किया है। इस तरह की ग़ज़लें आधुनिक हिंदी ग़ज़ल की ज़मीन तैयार करती हैं।

राह तो एक थी हम दोनों की
आप किधर से आए–गए!

हम जो लुट गए पिट गए, आप जो
राजभवन में पाए गए![22]

इस तरह हम देखते हैं कि शमशेर की इन ग़ज़लों की भाषा हिंदी की प्रकृति के निकट है। इन ग़जलों की भाषा में जीवन का संघर्ष दिखाई पड़ता है। इस तरह की ग़ज़लों में उनकी भाषा बेहद तथ्यपरक और व्यंग्यात्मक दिखाई देती है। यह व्यंग्य इनकी ग़ज़लों को और भी अधिक तीव्र तेवर प्रदान करती है–

इसमें तो आग है बहुत, इसका तो खून गर्म है
बोले वो रखके दिल पे हाथ, और जिगर टटोलकर[23]

शमशेर की इन ग़ज़लों के संदर्भ में सविता भार्गव का कथन है, ''कठिन और भारी शब्दों के प्रयोग में भी शमशेर जहाँ तहाँ अपनी प्रयोगशीलता प्रदर्शित करते हैं, खास तौर से विश्व राजनीति के संदर्भ में लिखी गई ग़ज़लों में।...इनमें परंपरागत क्लासिक ग़ज़ल की स्मृतियाँ हवा हो जाती हैं जिसमें बयान की कोमलता और बात की सूक्ष्मता अपने पूरे शबाब पर रह आई है।''[24] इस प्रकार हम देखते हैं कि शमशेर जिस मूड की ग़ज़ल लिखते हैं वह उसी के अनुरूप भाषा का प्रयोग भी करते हैं। उनकी भाषा उनकी ग़ज़लों की अंतर्वस्तु के आधार पर निर्मित होती है।

त्रिलोचन और शमशेर की ग़ज़लों में यदि शब्दों के प्रयोग को हम देखते हैं तो हम पाते हैं कि त्रिलोचन के यहाँ हिंदी की परंपरा के अनुकूल शब्दों का प्रयोग हुआ है जबकि शमशेर के यहाँ उर्दू के शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है।

त्रिलोचन की ग़ज़लों में हमें उनका संस्कृत के तत्सम शब्दों की ओर भी रुख दिखाई देता है। कहीं–कहीं ऐसा लगता है कि उनकी ग़ज़लों में आम बोलचाल के शब्दों की जगह संस्कृत के शब्द ज़बरदस्ती डाले गए हैं, जो ग़ज़ल के स्वाभाव के साथ मेल नहीं खाते हैं। जैसे आम बोलचाल के शब्द उनकी संवेदना को व्यक्त करने में असमर्थ हों। यह संस्कृतिष्ठ शब्दावली उनकी ग़ज़ल को दुरूह और बोझिल बना देती है।

महत्प्रेम का जो महासौध है,
रहेगा, रहेगा, न ढह पायेगा[25]

हास्य, वीभत्स, करुण, रौद्र रस न आ जाएँ
अपने ही स्वार्थ का इतना कभी श्रृंगार न कर[26]

प्रशंसा परार्थानुसंधान की है
कहाँ स्वार्थ का रंग गहरा न देखा[27]

त्रिलोचन की ग़ज़लों में संस्कृत के बहुत से शब्दों की भरमार है जो कि आम बोलचाल में भी प्रयोग में नहीं लाये जाते हैं। परार्थानुसंधान, उर्मिश्रृंग, वज्राघात, पाविपात, समुन्नति, सुदृढ़, इष्ट, अंतर्यामी, आतिथ्य, उत्तुंग, स्तंभ, अश्रु, विधिवत आदि जैसे अनगिनत संस्कृत के कठिन शब्दों का प्रयोग त्रिलोचन की ग़ज़लों में देखने को मिलता है। इस तरह के शब्द ग़ज़ल की भाषा की लोच, लय आदि में बाधा पहुँचाते हैं। जो ग़ज़ल जैसी नाजुक, नफ़ासत वाली सिन्फ़ को दुरुह बोझिल और नीरस बना देते हैं। इन शब्दों की जगह वह अगर उर्दू के आम बोलचाल के शब्दों का प्रयोग करते तो उनकी ग़ज़ल भी सुंदर तथा अच्छी लगती। साथ ही वह अपनी भावनाओं को बेहतर तरीके से संप्रेषित भी कर पाते। उनकी इसी कमी को ध्यान में रखते हुए जीवन प्रकाश जोशी कहते हैं, ''संस्कृत के कठिन पद शायरी के जिस्म पर जगह–जगह मस्सों से दिखाई पड़ते हैं।''[28]

इसके विपरीत त्रिलोचन जिन ग़ज़लों में आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते हैं वहाँ उनमें भाषा की लोच भी दिखाई पड़ती है, साथ ही वह पढ़ने–सुनने में भी अच्छे लगती हैं। उनकी ग़ज़लों में ऐसे काफी शेर हैं। जिनमें सरल शब्दों का प्रयोग किया गया है। इससे उनकी भाषा में लोच व सरलता आ गई है।

मेरा दिल व' दिल है कि हारा नहीं है
कहीं तिनके का भी सहारा नहीं है

जो मौजों को देखा तो जी ही न माना
य' मालूम था यह किनारा नहीं है

जिसे देख के लोग पलकें बिछा दें
कहेगा उसे कौन प्यारा नहीं है[29]

इस तरह के सरल शब्दों के प्रयोग से ग़ज़ल में नाद, भाषा की लोच, लय आदि भी अच्छी बन पड़ी है। यह सरल शब्द कहने सुनने में भी अच्छे लगते हैं। यह ग़ज़ल विधा की नाज़ुकी को भी बरकरार रखते हैं। त्रिलोचन ने अपनी ग़ज़लों में देशज शब्दों का भी प्रयोग किया है। दरअसल त्रिलोचन मिट्टी से जुड़े व्यक्ति हैं इसलिए उनकी ग़ज़लों में उस मिट्टी की गंध आना तो स्वाभाविक ही है। उनकी ग़ज़लों में नेम, धाम, फिरत, खरमिटाव, लाग, बिपत, आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है जिससे उनकी भाषा में स्वाभाविकता आ गयी है।

आ के गई बिपत नहीं
बदले मेरे नखत नहीं

सौदा बिका जो बिक गया
देखी कभी फिरत नहीं[30]

त्रिलोचन ने अपनी ग़ज़लों में उर्दू–फारसी के भी आम बोलचाल के शब्दों का प्रयोग किया है। इससे उनकी भाषा में लोच और रवानी आ गयी है। हालाँकि उन्होंने उर्दू–फारसी के शब्दों का प्रयोग कम ही किया है। परंतु जहाँ किया है वहाँ उनमें उर्दू–फारसी की ग़ज़लों का लहज़ा आ गया है।

गुल गया, गुलशन गया, बुलबुल गया, फिर क्या रहा
पूछते हैं अब व' ठहरा किस जगह सैयाद था[31]

देख लेता हूँ सुब्होशाम की मैं रंगीनी
रंग मेरे ही लिए सुबह नहीं शाम नहीं[32]

अतः हम कह सकते हैं कि जहाँ भी त्रिलोचन ने अपने भावों के अनुकूल शब्दों का चयन किया है वहाँ उनकी ग़ज़लों में स्वाभाविकता और रवानगी आ गई है। भावानुकूल

शब्दों के चयन से उनकी ग़ज़लों में भी निखार आ गया है। इससे शब्दों के सही चयन के कारण उनकी ग़ज़लों की मार्मिकता बढ़ गई है और उनकी भाषा भी सपाटबयानी से मुक्त हो पायी है।

शमशेर ने हिंदी की जमीन पर खड़े होकर अपनी ग़ज़लों की रचना नहीं की बल्कि उन्होंने तो उर्दू फारसी की परंपरागत ग़ज़लों को ही आगे बढ़ाया है। उनकी ग़ज़लों में संस्कृतनिष्ठ शब्दावली को ढूँढ़ना बेमानी होगा। उन्होंने हालाँकि इक्का–दुक्का संस्कृत के शब्दों का प्रयोग किया है। परंतु वह ऐसे लगते हैं जैसे कि वह संस्कृत के नहीं देशज भाषा के शब्द हों क्योंकि वह आम फहम की बोलचाल में इतना रम गए हैं कि उन्हें अलग से पहचानना मुश्किल जान पड़ता है।

मूर्ति–चोर मंदिर में बैठा
औ' गाहक अमरीका में

दान–दच्छिना लाखों डॉलर
गुपत–दान करवाए गए[33]

इनमें ग्राहक का गाहक, दान–दक्षिणा का दान–दच्छिना, गुप्त दान का, गुपत दान कर इन संस्कृत शब्दों को आम बोलचाल में बदल कर इन्हें देशज भाषा के रंग में शमशेर ने रंग दिया है। इसके अलावा शमशेर की ग़ज़लों में साधारण हिंदी के सरल–सहज शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। परंतु ऐसी ग़ज़लें राजनीतिक और यथार्थपरक ही हैं। अन्य ग़ज़लों में यह कम ही देखने को मिलता है।

जितना ही लाउडस्पीकर चीख़ा
उतना ही ईश्वर दूर हुआ :
(अल्ला–ईश्वर दूर हुए!)
उतने ही दंगे फैले, जितने
'दीन–धरम' फैलाए गए।[34]

लेकिन शमशेर की ग़ज़लों का असली रंग उर्दू फारसी के शब्दों से घुला मिला है। उसमें उर्दू शायरी की ही रंगत शामिल है। जो उनकी संपूर्ण ग़ज़लों में देखने को मिलती है। उन्होंने उर्दू–फारसी के न केवल आम बोलचाल के शब्दों का प्रयोग किया है बल्कि उन्होंने उर्दू–फारसी के कठिन शब्दों का भी प्रयोग किया है। इसके बावजूद यह शमशेर की खूबी है कि उनकी ग़ज़लों में सहजता बनी हुई है। उनकी ग़ज़लों में सहज शब्दों का प्रयोग देखिएः

यहाँ कुछ रहा हो तो हम मुँह दिखाएँ
उन्होंने बुलाया है क्या ले के जाएँ

कुछ आपस में जैसे बदल–सी गई हैं
हमारी दुआएँ तुम्हारी बलाएँ[35]

इस ग़ज़ल में उनके सरल और आम बोलचाल के शब्दों का प्रयोग देखा जा सकता है। इसमें हिंदी के लोकगीत जैसी रंगत दिखायी पड़ती है। इसके अलावा शमशेर की ग़ज़लों में उर्दू–फारसी के कठिन शब्दों को देखिएः

क़दमरंजा है सूए–बाम
एक शोख़ी क़यामत की

मेरे ख़ूने–हिना–परवर से
रंगी ज़ीना होना है[36]

महवियते–सुजूद में अस्ल वुजूद भी गया
सुबह को भी समझ के शाम बन्दए–शाम हो चुका[37]

इन ग़ज़लों में शमशेर ने उर्दू–फारसी के इतने कठिन शब्दों का प्रयोग किया है कि यह ग़ज़लें हिंदी की ग़ज़लों से ज्यादा उर्दू की चीज़ ही मालूम पड़ती हैं। इसके बावजूद शमशेर के यहाँ उर्दू के आम–बोलचाल के शब्दों का प्रयोग करने से उनकी ग़ज़लों में परंपरागत शायरी कर रंग आ गया है। उनकी ग़ज़लों में रवानी, नाजुकी,

नफासत और भाषा की लोच देखने लायक है। इनमें कहीं भी लय के टूटने का अंदेशा नहीं होता है। जबकि त्रिलोचन के यहाँ इस रवानी और नफासत का अभाव दिखाई पड़ता है।

त्रिलोचन और शमशेर दोनों की ग़ज़लें जब आम बोलचाल का लहज़ा पकड़ती हैं तो उनमें एक प्रकार की संवादात्मक स्थिति पैदा हो जाती है। इसमें संवाद की शैली के द्वारा बात कही जाती है परंतु त्रिलोचन और शमशेर दोनों की संवादात्मक शैली में अंतर है।

त्रिलोचन की ग़ज़लों में जब संवाद आता है तो वह व्यंग्य के रूप में आता है। वह एक विरोधाभास खड़ा करके संवाद के माध्यम से तीखा प्रहार करते हैं। उसमें कटाक्ष होता है। इसमें वह घटना का चित्र उकेर देते हैं। कभी–कभी वह स्वयं से भी संवाद करते हैं परंतु इस स्थिति में उनकी पीड़ा ही दिखालाई देती है।

अपने हृदय में स्थान मुझको दो तो त्रिलोचन
क्या दुःख जग की आँख का तारा नहीं हूँ मैं[38]

इसके विपरीत शमशेर की ग़ज़लों में जो संवादात्मक स्थिति बनती हैं। उसमें वह अपने ख़्याल, अपने आत्म से स्वयं संवाद करते हैं। कहीं–कहीं वह अपनी प्रेमिका से भी संवाद की स्थिति में होते हैं। इनमें उस तरह का व्यंग्य या तीखापन नहीं होता जैसा त्रिलोचन के यहाँ मिलता है। इनमें एक प्रकार की बेख़याली की स्थिति है और स्वयं से सवाल है।

इतना उदास आपका दिल किसलिए हुआ
हर दर्द की दवा है, ज़मानो–मकाँ के पार[39]

इस बोलचाल का लहज़ा पकड़ने के कारण त्रिलोचन और शमशेर दोनों की ग़ज़लों में सर्वनामों का प्रयोग अधिक हुआ है। संवेदनाओं का प्रयोग ग़ज़ल में

खूबसूरती पैदा करता है। परंतु यहाँ दोनों ग़ज़लकारों में यह अलग–अलग संदर्भो में प्रयोग किए गए हैं।

त्रिलोचन के यहाँ सर्वनाम (मैं, वो, तुम, हम, आप) आदि का प्रयोग नसीहत देने, व्यंग्य पैदा करने, विरोध की स्थिति को उजागर करने लिए किया गया है। यह सर्वनाम एक के साथ दूसरे की तुलना कर दोनों की स्थितियों के फर्क को भी दिखाने के लिए प्रयोग किए गए हैंः

आप कहते हैं तो अपनी भी सुना देता हूँ मैं
दिल के अंदर जो छिपा है वह दिखा देता हूँ मैं[40]

बोले व' तुम्हें दर्द है मालूम है मुझे
जलसा य' तुम्हारा ही है गाना ही पड़ेगा।[41]

शमशेर की ग़ज़लों में सर्वनामों का प्रयोग एकदम अलग संदर्भ रखता है। क्योंकि इन सर्वनाम द्वारा शमशेर 'स्व' और 'पर' के संबंध को दिखाने का प्रयास करते हैं। यह संबंध प्रेम, प्रकृति, मानवता, व्यथा, यथार्थ और कभी–कभी रहस्यभाव की भी व्यंजना करते हैं। डॉ. वीरेंद्र सिंह कहते हैं, ''यदि व्यापक संदर्भों में कहा जाए तो इन सर्वनामों के द्वारा वे अपने संबंधों को, जो विविध आयामी हैं, निकटता, अपनत्व और संवादिता की सार्थक और रागपूर्ण स्थितियाँ उत्पन्न करते हैं।''[42]

तुम एक ख़ाब थे जिसमें खुद खो गए हम
तुम्हें याद आएँ तो क्या याद आएँ[43]

दर्द को पूछते थे वो, मेरी हँसी थमी नहीं
दिल को टटोलते थे वो, मेरा जिगर हिला नहीं।[44]

इस तरह सर्वनाम के प्रयोगों से शमशेर की ग़ज़लों में रहस्य की–सी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। एक अच्छा शेर वही होता है जिससे कई अर्थ प्रतिध्वनित हों। और भाषा के सटीक प्रयोग में मूल अर्थ पर एक झीना परदा डाल दिया गया हो,

जिससे रहस्य की सृष्टि हो। यह रहस्य भाव अज्ञात के प्रति भी हो सकता है और ज्ञात के प्रति भी।

त्रिलोचन और शमशेर दोनों की ग़ज़लों में मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है। मुहावरे ग़ज़लों को भाषाई रूप से सक्षम बनाने का कार्य करते हैं। ग़ज़लों के लिए मुहावरों का प्रयोग अनिवार्य होता है।

त्रिलोचन के यहाँ हिंदी भाषा के प्रचलित मुहावरों का प्रयोग अधिक देखने को मिलता है। इन मुहावरों के माध्यम से वह सांकेतिक भाषा में जीवन के गंभीर तथ्यों की ओर इशारा करते हैं। उनकी ग़ज़लों में प्रयुक्त हुए कुछ मुहावरों के उदाहरण इस प्रकार हैं:

सर आँखों पर

हम तो सर आँखों पे लेने को तुम्हें बैठे हैं,
क्या करें हम जो तुम्हीं सामने आया न करो[45]

तिनके का सहारा

मेरा दिल व' दिल है कि हारा नहीं है
कहीं तिनके का भी सहारा नहीं है[46]

आँख का तारा

अपने ह्रदय में स्थान मुझ को दो तो त्रिलोचन
क्या दुःख जग की आँख का तारा नहीं हूँ मैं[47]

दूध का जला

बात क्या कहते हो, तुम से डरे त्रिलोचन जो
मैं न मानूँगा, दूध का ही जला है कोई[48]

हाल पतला होना

हाल पतला है मेरा तुझ से बताऊँ तो क्या
दुख पुराना है नई बात सुनाऊँ तो क्या[49]

आँख में पानी न होना

दुख तुमको किसी पर किसलिए हो, यह बात त्रिलोचन अच्छी नहीं
जिस की आँखों में पानी नहीं, आभार तुम्हारा क्या जाने[50]

इस प्रकार हम देखते हैं कि त्रिलोचन की ग़ज़लों में भी हिंदी के ही प्रचलित मुहावरों का ही प्रयोग हुआ है, जिससे उनकी ग़ज़लें हिंदी का ठेठ रंग पकड़ती हैं। इनकी यह ग़ज़लें कहीं–कहीं सूक्तियों जैसा भाव भी पैदा करती हैं।

इसके विपरीत शमशेर की ग़ज़लों में हिंदी के प्रचलित मुहावरों के साथ–साथ उर्दू–फारसी के मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है। शमशेर प्रचलित मुहावरों के साथ वाक्य को मुहावरे में तबदील कर देने का हुनर जानते हैं। जिससे उनकी ग़ज़लों में लोच के साथ भाषा में कसाव भी पैदा होता है। शमशेर के प्रचलित मुहावरों का प्रयोग किया है साथ ही वाक्यों को मुहावरों में तब्दील कर दिया है। उन्होंने मुहावरों के शब्द और भावों का भी विस्तार किया है। उनके द्वारा किए गए मुहावरों का प्रयोग देखें:

साँस में रम जाना

हज़ार हम उसे चाहें कि अब न चाहें और
जो साँस–साँस में रम जाए वो, तो क्योंकर हो[51]

आपा खोना

हम अपने शहर के बाज़ार ही में खोए गए
किसी को भी न मिला अपना आपा खोया हुआ[52]

किस्सा तमाम होना

आपकी दास्तान थी गोया किसी की जिन्दगी
आपके आने–आने तक क़िस्सा तमाम हो चुका[53]

बहार आना

हर एक शगूफ़ा यह कहता हुआ खिलता है
शायद कि बहार आई! शायद ही बहार आई![54]

सर हथेली पर होना

फिर सुर्ख़ निशाँ बनकर, काँधे पे उठे तनकर
जो सर है हथेली पर, उस सर की दुआ माँगो[55]

शमशेर ने अपनी ग़ज़लों में प्रचलित मुहावरों का प्रयोग इस प्रकार किया है कि 'शब्द विस्तार' और 'भाव विस्तार' करके शेर की एक पूरी पंक्ति ही बना दी है–

सर पर जुनून/साँस का धोखा/सर पर साया

यास! दिल को बाँध, सरपर जल्द सायाकर जुनूँ
दम नहीं इतना जो तुमसे साँस का धोका कहें।[56]

इनमें शब्द विस्तार और भाव विस्तार किया गया है। कुछ और मुहावरों के उदहारण हैं:

आईना दिखाना

इश्क की मजबूरियाँ हैं, हुस्न की बेचारगी
रूए आलम देखिएगा? आइना देता हूँ मैं[57]

मुँह दिखाना

यहाँ कुछ रहा हो तो हम मुँह दिखाएँ
उन्होंने बुलाया है क्या ले के जाएँ[58]

शमशेर ने उर्दू–फारसी के मुहावरों के साथ–साथ हिंदी के भी प्रचलित मुहावरों का भी प्रयोग किया है। साथ ही उनके ग़ज़ल के शेरों में गठन और कसाव इस तरह का है कि वह स्वयं मुहावरों में तब्दील हो गए हैं। वह आसानी से ज़बान पर चढ़ जाते हैं। इसी तरह ग़ालिब और मीर के शेर आज भी लोगों की ज़बान पर मुहावरों की तरह चढ़े हुए हैं। शमशेर के शेरों में भी हमें वही कसाव और रवानी देखने को मिलती है।

प्रतीक और बिंब विधान

प्रतीक और बिंब का प्रयोग कविता को समृद्ध करने के लिए किया जाता है। प्रतीक व्यक्त के माध्यम से अव्यक्त का संकेत है। कवि द्वारा अपने मनोभावों को संक्षेप में अभिव्यक्त करने के लिए जो सांकेतिकता अपनाई जाती है। जिससे इन मनोभावों को कम–से–कम शब्दों में व्यक्त किया जा सके। यह कार्य कवि प्रतीकों के माध्यम से करता है। इसके विपरीत कल्पना में किसी वस्तु का जो चित्र बनता है, उसे बिम्ब कहते हैं। बिंब की संक्षिप्त एवं सरलतम परिभाषा है कि 'बिंब शब्द निर्मित चित्र' होते हैं।

ग़ज़ल में चूंकि बात सांकेतिकता के सहारे कही जाती है। ग़ज़ल का हर शेर अपने आप में एक स्वतंत्र बिंब होता है। ग़जलों में प्रतीक और बिंब अर्थ विकास में सहयोग देते हैं। इसलिए ग़ज़लों के लिए प्रतीक और बिंब अनिवार्य तत्व होते हैं।

त्रिलोचन के ग़ज़ल संग्रह 'गुलाब और बुलबुल' में प्रतीकों और बिंबों का प्रयोग हिंदी की अपनी परंपरा के अनुसार ही किया जाता है। इन ग़ज़लों में उर्दू–फारसी के पंरपरागत प्रतीक जैसेःगुल, साक़ी, मय, चांदनी, शम्मां, परवाना आदि का प्रयोग देखने को नहीं मिलता है। त्रिलोचन अपनी ग़ज़लों में भी अपने प्रतीक किसान जीवन और

प्रकृति से ही ग्रहण करते हैं। उनकी ग़ज़लों में बसंत, धूप, सूर्य, नदी, खेत, वर्षा छप्पर, कमल, अग्नि, बटोही, आषाढ़, कोयल आदि जनपदीय प्रतीक ही दिखायी देते हैं। प्रकृति के लिए हुए प्रतीकों का प्रयोग तो वह बड़े उल्लास के साथ करते हैं। जीवन में जागृति लाने के लिए वह सूर्य के प्रतीक का प्रयोग करते हैं:

जगिए हुआ है और सूर्य की ध्वजा चढ़ी,
घर घर य' समाचार सुनाया यहाँ वहाँ[59]

त्रिलोचन जीवन की विसंगतियों को प्रकट करने के लिए प्रतीक भी जीवन से ही लेते हैं। उनके यहाँ इस तरह के प्रतीकों की भरमार है:

जिंदगी कितनों की कटती है आस्माँ के तले
एक छप्पर भी किसी से यहाँ छाया न गया[60]

इसमें आस्माँ और छप्पर के प्रतीकों का प्रयोग कर जीवन की विडम्बना को किस प्रकार त्रिलोचन ने उभारकर रख दिया है जिससे इस पूरी व्यवस्था की सच्चाई आँखों के सामने उजागर हो जाती है।

त्रिलोचन की ग़ज़लों में मिथक की हिंदी की परंपरागत रूढ़ियों के रूप दिखाई देते हैं परंतु त्रिलोचन ने एक शेर में उर्दू के एक ऐसे मिथक का प्रयोग किया है जो कि उर्दू शायरी में भी शायद ही देखने को मिले:

तरस आता है सुनकर कैसी लाचारी है कुक़नूस को
कि गाते गाते तन के साथ घर अपना जला देना[61]

क्यों कही यह बात वीणापाणि ने तुम से त्रिलोचन
आज ओ कुक़नूस, गा कर तार जीवन के हिला दो[62]

त्रिलोचन के यहाँ उर्दू के जो प्रतीक प्रयोग में भी लाए गए हैं वह हिंदी की आम बोलचाल की भाषा में इतना रम गए हैं जिन्हें अलग करके देखना मुश्किल होगा।

त्रिलोचन की ग़ज़लों में बिंबों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह अपने बिंब भी यथार्थ जगत तथा प्रकृति से ही ग्रहण करते हैं। त्रिलोचन जो बिंब उकेरते हैं उसकी चित्रात्मकता के साथ उसकी ध्वनि का आनंद देर तक पाठकों के मन पर बना रहता है। उन्होंने अपनी एक ग़ज़ल में बसंत का बिंब खींचा है वह बहुत ही मोहक और सुंदर बन पड़ा हैः

कोकि़ल ने गान गा के कहा आ गया बसंत
आमों ने मौर ला के कहा आ गया बसंत

क्यों मुझ को छेड़ती है हवा बोल बार–बार
उस ने ज़रा बल खा के कहा आ गया बसंत

हर टहनी में जीवन के नए पत्र आ गए
पीपल ने दल दिखा के कहा आ गया बसंत[63]

इस पूरी ग़ज़ल में त्रिलोचन ने बसंत के आने का इतने बारीकी से बिंब उतारा है जो कि उन जैसा प्रकृति से जुड़ा, मिट्टी से जुड़ा किसानी जीवन का कवि ही उतार सकता है। उनके बिंब और प्रतीक भी जीवन और जगत से जुड़े हुए हैं जो यथार्थ को ही व्यक्त करते हैं।

शमशेर के ग़ज़ल संग्रह 'सुकून की तलाश' में प्रतीकों और बिंबों का प्रयोग उर्दू–फारसी की परंपरागत शैली के अनुरूप हुआ है। शमशेर के यहाँ हिंदी काव्य जगत में प्रयोग में लाए जाने वाले प्रतीकों का अभाव है। शमशेर की ग़ज़लों में उर्दू फारसी के परंपरागत प्रतीकों का प्रयोग तो हुआ है परन्तु शमशेर ने उन्हें अपने नए रंग में रंगने का प्रयास किया है। शमशेर ने अपनी ग़ज़लों में काफ़िर, मातम, आख़ीर वक़्त, काफ़िला, ख़ालिक़, बहार, शबाब, इश्क, हुस्न, रूह, कज़ा, साहिल, बादल, चाँदनी, क़यामत, पियाला आदि उर्दू–फारसी के परंपरागत प्रतीकों का ही प्रयोग हुआ है। उनके परंपरागत प्रतीक का उदाहरण देखिएः

आई बहार हुस्न का ख़ाबे–गराँ लिए हुए
मेरे चमन को क्या हुआ, जो कोई गुल खिला नहीं[64]

जब बादलों में घुल गई थी कुछ चाँदनी–सी शाम के बाद
क्यों आया मुझे याद अपना वह माहे–जमाल एकाएक[65]

इस तरह के पंरपरागत प्रतीक उनकी ग़ज़लों में भरे–पड़े हैं परंतु उन्होंने कुछ नए प्रतीकों को भी अपनी ग़ज़ल में जगह दी है। यह नए प्रतीक उनकी सामाजिक यथार्थ संबंधी कुछ ही ग़ज़लों में देखें जा सकते हैं। यह प्रतीक हिंदी की ग़ज़ल को एक ज़मीन मुहैया कराने की भी कोशिश लगती हैः

किस लीलायुग में आ पहुँचे
अपनी सदी के अंत में हम

नेता, जैसे घास–फूस के
रावन खड़े कराए गए।[66]

शोर भजन औ' की कीर्तन का है या फ़िल्मी धुनों का हंगामा
सर पे हि लाउडस्पीकर की टेढ़ी छतरी क्यों बाक़ी है[67]

इन ग़ज़लों में शमशेर ने लीलायुग, रावन और 'लाउडस्पीकर की टेढ़ी छतरी' जैसे प्रतीकों का प्रयोग एकदम नए ढंग से किया है। उनकी ग़ज़लों में इन प्रतीकों से कसाव के साथ–साथ व्यंजनात्मकता भी बढ़ गयी है। शमशेर ने अपनी ग़ज़लों में जहाँ अत्याधिक रूप से परंपरागत प्रतीकों का प्रयोग किया है वहीं उन्होंने नए प्रतीकों का भी प्रयोग कर हिंदी की ग़ज़लों के लिए संभावनाओं की तलाश की है।

शमशेर ने बिंब का प्रयोग जिस प्रकार से अपनी कविताओं में किया है उसी प्रकार ग़ज़लों में भी बिंब उसके अर्थ विकास में सहायक हुए हैं। शमशेर अपनी कविताओं में भी बिंबों और संकेतों का सहारा ही अधिक लेते हैं। वह अपनी रचनाओं में इंद्रिय और अतिंद्रिय दोनों अनुभूतियों को बिंबों के द्वारा प्रस्तुत करते हैं। उनकी ग़ज़लों में असंबद्ध

बिंब उभरते हैं। उन असंबद्ध बिंबों के माध्यम से शमशेर अपने अंतर्जगत के बिखराव, टूटन और थकन को प्रदर्शित करते हैं।

साहिल पे वो लहरों का शोर, लहरों में वो कुछ दूर की गूँज
कल आपके पहलू में जो था, होता है निढाल एकाएक

दिल यों ही सुलगता है मेरा, फुँकता है युँ ही मेरा जिगर
तलछट की अभी रहने दे, सब आग न ढाल एकाएक[68]

इन शेरों में शमशेर ने पहले बिंब खींचा है फिर अपनी स्थिति को सामने रख उस बिंब को अर्थ प्रदान किया है। इस तरह के बिंब चाक्षुष बिंब की श्रेणी में आते हैं। दरअसल शमशेर एक चित्राकार हैं और चित्रकार होने के कारण शमशेर के यहाँ चाक्षुष बिंबों की बहुलता देखने में मिलती है। जैसेः

उसे बदलियों में भी पहचान लोगे
कि उस चाँद–से मुँह पे हाला पड़ा है

य' बादल की लट चाँद पर है कि मन को
दबाए हुए कौड़ियाला पड़ा है[69]

इस तरह हम देखते हैं कि शमशेर की ग़ज़लों में आए बिंब उनकी अनुभूतियों को विस्तार प्रदान करते हैं। साथ ही यह उनके चित्रकार के व्यक्तित्व को भी उजागर करते हैं।

ग़ज़ल कहने का ढंग

त्रिलोचन ने अपनी ज्यादातर ग़ज़लों में अभिधात्मक शैली अपनायी है। दरअसल त्रिलोचन को अपनी बात सीधे ढंग से कहना ज्यादा पंसद है। यह उनकी प्रकृति के अनुकूल है इसलिए उनकी ग़ज़लों का वाक्य विन्यास शिथिल दिखायी पड़ता है।

कहीं–कहीं उनमें बहुत ज्यादा सपाटबयानी झलकती है। उनके शेरों में अर्थ घनत्व, चारूता का अभाव दृष्टिगोचर होता है। कई बार तो उनकी ग़ज़लों में भी गद्य जैसा वाक्य–विन्यास दिखायी देता है। जैसेः

एक था सिद्धार्थ सुख को छोड़ संन्यासी हुआ
आज भी दुख है कहीं चलिए दिखा देता हूँ मैं[70]

त्रिलोचन की ग़ज़लों में कहीं–कहीं तो वाक्य बहुत लम्बे हो गए हैं जो ऊब पैदा करते हैं जिससे उनकी लय टूटी–सी प्रतीत होती है। कई बार तो वह सरल शब्दों के बीच में अचानक से भारी–भरकम शब्द रख देते हैं जिससे ग़ज़ल की लय भंग हो जाती है और शेर नीरस व बोझिल हो जाता है। इसी तरह उनके शेर के दो मिसरे कहीं–कहीं अलग–अलग काल में दिखते हैं। उनका एक शेर देखिए–

दर्द आवाज़ में थिरकता है
ऐसे में कैसे स्वर उठाता तू[71]

इसमें त्रिलोचन का पहला मिसरा वर्तमान काल में है तो दूसरे मिसरे में वह भूतकाल में चले जाते हैं इससे दोनों मिसरों का तारतम्य बिगड़ा–सा गया है। इससे ग़ज़ल की गेयता में भी अवरोध पैदा होता है।

अभिधात्मक शैली के साथ–साथ त्रिलोचन में व्यंजनात्मक शैली के भी छुट–पुट रंग दिखाई देते हैं परंतु वह व्यंग्य के रूप में ही उभर कर आते हैं। जैसेः

चिता पर चढ़े, क़ब्र में जा के सोए
जगत को मिले है अमर कैसे कैसे

इधर शांति की प्यास जी में जगी है,
अभी देखने हैं समर कैसे कैसे[72]

इसके विपरीत शमशेर की अधिकतर ग़ज़लें व्यंजनात्मक शैली में लिखीं गयी हैं। इसमें उनकी ग़ज़लें अधिकतर आशिक–माशूक प्रेम के विषय वाली हैं। इन ग़ज़लों का लहज़ा शिकवे–शिकायतों वाला है। भाषा का व्यंजनात्मक रूप शमशेर की ग़ज़लों की विशेषता है। उनकी ग़ज़लों में परंपरागत उर्दू की ग़ज़लों की भाँति सांकेतिकता देखने को मिलती है। जिससे व्यंजना का पुट उनमें आसानी से आ जाता है। शमशेर इसमें माहिर हैं। इसे एक उदाहरण से देखा जा सकता हैः

मुस्कुराते हुए वो आए मेरी आँखों में
देखने क्या सरोसामान क़ज़ा का बाँधा[73]

यहाँ कुछ रहा हो तो हम मुँह दिखाएँ
उन्होंने बुलाया है क्या ले के जाएँ[74]

हालाँकि शमशेर की अधिकतर ग़ज़लों में व्यंजनात्मक शैली ही दिखाई देती है। लेकिन उन्होंने कुछ ग़ज़लें अभिधात्मक शैली में भी लिखी हैं। इस तरह की ग़ज़लों में शमशेर अपनी बात सहज और सरल रूप में बिना किसी लाग–लपेट के सीधे–सीधे रख देते हैं। इसके बावजूद भी उनकी इस प्रकार की ग़ज़लें सपाटबयानी का शिकार नहीं हुई हैं बल्कि वहाँ भाषा में लोच और रवानी बरकरार है। जैसेः

बदल रहा है बढ़ा जा रहा है तेजी से
अवाम वक़्त की रौ है, अवाम है आलम[75]

जाओ जाओ तुम्हारी क़सम देख ली
अब आयंदा हमें मुँह दिखाना नहीं[76]

इस प्रकार की अभिधात्मक शैली में लिखी गई ग़ज़लें शमशेर के यहाँ कम ही मिलती हैं। दरअसल यह शमशेर की प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं हैं।

त्रिलोचन अपनी ग़ज़ल कहने में एक बातचीत की शैली या ढंग का भी प्रयोग करते हैं जिससे उनकी ग़ज़लों में एक प्रकार की रोचकता आ जाती है। यह बातचीत

लोगों से सवाल के रूप में, उन्हें नसीहत देने के रूप में तथा प्रेमिका से सम्बोधन के रूप में हमें उनकी ग़ज़लों में दिखायी देती है। जैसे प्रकृति से बातचीत करते हुए उनकी ग़ज़ल का अंदाज देखिएः

मैंने प्रभात से कहा बदले हुए हो आज
तो उसने मुसकरा के कहा आ गए बसंत[77]

इसी प्रकार प्रेमिका से संवाद करते समय उनकी ग़ज़ल का अंदाज बदल जाता है। जैसेः

तुम कहते हो तो ठीक, मुझे जीना ही होगा
यह भी ज़रा समझा दो कि जाऊँ कहाँ कहाँ[78]

इन दिनों तुम ने कुछ अवकाश तो पाया होगा
मुश्किलों ने न इधर तुमको सताया होगा[79]

अपने बहुत से शेरों में त्रिलोचन स्वयं से ही बातें करते हैं। यानी उनकी ग़ज़लों में आत्मालाप देखने को मिलता हैः

जानता है तू त्रिलोचन क्या फ़कीरी रंग है
क्यों नगर में घूमता हूँ क्यों सदा देता हूँ मैं[80]

हम त्रिलोचन तुझे बताएँ क्या
तू तो दुनिया को बता देता है[81]

त्रिलोचन की ग़ज़लों में परंपरागत उर्दू शायरी का भी रंग देखने को मिलता है। उन्होंने भी उर्दू के सरलतम शब्दों का प्रयोग कर अपनी ग़ज़लों को परंपरागत रंग में ढाला है हालाँकि इस प्रकार की ग़ज़लें त्रिलोचन के यहाँ कम ही देखने को मिलती हैं। परंतु जहाँ भी उन्होंने इस प्रकार की ग़ज़लें कहीं हैं, उनकी भाषा की लोच और रवानी

देखते ही बनती हैं। साथ ही इस प्रकार की ग़ज़लों में त्रिलोचन अपना ख़याल भी पेश करते हैं। यानी एक रोमानियत उनकी ग़ज़लों में आ जाती है। जैसेः

मेरे मरने की खबर जा के उन्हें मत देना
वे नहीं रोते हैं रोने का नाम करते हैं[82]

और गफ़लत करो जवानी है
बात बन जाएगी अभी क्या है[83]

हम गुल को चाहते हैं कोई कैसे जानता
एहसान मंद हम भी कम नहीं हैं ख़ार के[84]

और भी नाम हैं दुनिया में मगर मेरे लिए
नाम है एक तेरा और कोई नाम नहीं[85]

इस तरह उर्दू के लहज़े वाले शेर त्रिलोचन के यहाँ रूई के ढेर में सूई ढूँढने के समान है। यह उनके संग्रह में बहुत कम ही हैं। लेकिन जितने भी है वह खूबसूरत हैं, उनमें रवानी और लोच है।

शमशेर के ग़ज़ल संग्रह को देखकर लगता है कि उसमें एक चीज़ है जो उन्हें हिंदी के दूसरे ग़ज़लकारों से अलग करती है। वह है उनकी 'प्रश्नाकुलता'। शमशेर के यहाँ प्रश्न हर जगह मिलेंगे। त्रिलोचन के यहाँ प्रश्नाकुलता का अभाव दिखता है। जबकि शमशेर प्रेम का वर्णन कर रहे हो, विरह का वर्णन कर रहे हो या फिर सामाजिक यथार्थ का वर्णन कर रहे हों, उनकी मुद्रा हमेशा प्रश्नाकुल ही रहती है। दरअसल यह प्रश्नाकुलता आधुनिक साहित्य का सबसे बड़ा लक्षण है। शमशेर के यहाँ यह अधिक ही मिलता है। जैसेः

चुपके से कोई कहता है : शाइर नहीं हूँ मैं
क्यों अस्ल में हूँ वो जो बज़ाहिर नहीं हूँ मैं[86]

इसमें वह इस तरह से बात रखते हैं कि क्या जो मैं हूँ वह दिखाई नहीं देता? इस तरह का लहज़ा उनके यहाँ काफी दिखायी देता है। इसी स्थिति में कहीं–कहीं तो वह स्वयं से ही सवाल करने लगते हैं:

मेरे दिल में रातों में यह तुझ बग़ैर
बबूला–सा रह–रह के उठता है क्यों[87]

इस प्रकार के जिन ग़ज़लों में शमशेर अपनी इस प्रश्नाकुलता की जिज्ञासा की गहनतम अनुभूति में होते हैं तो वह खुद सवाल पूछते हैं और खुद ही उनके उत्तर देने लगते हैं:

इतना उदास आपका दिल किसलिए हुआ
हर दर्द की दवा है ज़मानों–मकाँ के पार[88]

यह प्रश्नाकुलता उनकी राजनीतिक एवं सामाजिक यथार्थ की ग़ज़लों में और भी तीखे रूप में उभर कर सामने आती है। जैसेः

कैसा सियासत का तूफ़ान कि आग की लपटों में इंसान
अपनों पर अपनों की ही बेदादगरी क्यों बाकी है[89]

यह प्रश्नाकुलता दरअसल विसंगति और विडंबनापूर्ण स्थिति को और भी व्यापक रूप में सामने रख देती है और पूरी वास्तविकता आँखों के सामने एकदम साफ होने लगती है। शमशेर के ग़ज़ल कहने में उर्दू–फारसी की परंपरागत शैली का एक ढंग वह भी देखने को मिलता है जिसमें शायर पहले किसी ख़याल या बात को रखता है। फिर उसे खोलता है और उसके विस्तार में जाता है। या यूँ कहें कि पहले मिसरे को स्पष्ट करने के लिए वह दूसरे मिसरे में उसकी दलील देता हैः

ऐ दिलनेवाज़ पहलू ही जब दिल के और हों
क्या ख़िलवतों में लुत्फ़ धरा क्या हिजाब में[90]

इस शेर में शमशेर पहले मिसरे में एक बात रखते हैं तथा दूसरे मिसरे में उसे स्पष्ट करते हुए उसकी दलील पेश करते हैं।

इस प्रकार हम पाते हैं कि त्रिलोचन और शमशेर दोनों के ग़ज़ल कहने के ढंग में भी काफी फर्क है। दरअसल दोनों ग़ज़लकारों की ग़ज़ल कहने की ज़मीन ही अलग–अलग हैं। इसलिए दोनों की ग़ज़ल शैली भी अलहदा है।

ग़ज़ल संरचना की दृष्टि से

सरंचना की दृष्टि से ग़ज़ल की अनिवार्य शर्त है कि ग़ज़ल में उसके रदीफ, काफ़िए का ठीक से निर्वाह होना और ग़ज़ल का बहर में लिखा जाना। साथ ही साथ मतला, मक़ता भी ग़ज़ल की संरचना के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। त्रिलोचन की ग़ज़लें उर्दू की परंपरा से अलग हिंदी में ग़ज़ल के लिए ज़मीन की तलाश में लिखी गयी ग़ज़लें हैं। उनमें कुछ हद तक मतला, मकता, रदीफ, काफ़िए और बहर में दोष देखा जा सकता हैं परंतु शमशेर की ग़ज़लें संरचना की दृष्टि से उर्दू परंपरा की ही ग़ज़लें हैं इसलिए उनकी ग़ज़लों में मतला, मक़ता, रदीफ़ काफ़ियों और बहरों का काफी हद तक निर्वाह हुआ है।

त्रिलोचन के यहाँ हमें मतले का सफल निर्वाह दिखाई देता है। उन्होंने लगभग अपनी हर ग़ज़ल में मितले का सफल निर्वाह किया है। मतले की दोनों पंक्तियों में एक ही रदीफ और काफ़िया हाता है उदाहरण के लिए देखिएः

यदि नहीं अभिलाष तो जीवन नहीं
यदि नहीं उत्साह तो यौवन नहीं

जिस को देख देख कर खो जाएँ हम,
रूप में वह शेष भोलापन नहीं[91]

उक्त ग़ज़ल के पहले शेर की दोनों पंक्तियों में 'नहीं' रदीफ है तथा 'जीवन' 'यौवन' 'भोलापन' काफ़िया है, जिनका यहाँ प्रयोग किया गया है।

शमशेर की ग़ज़लों में भी हमें मतले का सफल निर्वाह देखने को मिलता है। शमशेर के ग़ज़ल संग्रह में कुछ बाईस ग़ज़लें हैं, जिनमें 19 ग़ज़लें मतले से शुरू होती है। उदाहरण देखिएः

बहुत काम बाक़ी है–टाला पड़ा है,
मगर उनकी आँखों पे' जाला पड़ा है,

सुराही पड़ी है पियाला पड़ा है
करें क्या–जुबानों पे' ताला पड़ा है[92]

शमशेर की इस ग़ज़ल में दोनों ही मिलते हैं। दूसरे मतले को मतला–ए–सानी कहते हैं। इसमें 'पड़ा' है' रदीफ तथा टाला, जाला, पियाला, ताला क़ाफ़िया है।

त्रिलोचन के यहाँ ग़ज़लों में रदीफ और काफिए का भी निर्वाह हुआ है। परंतु उनके रदीफ और काफिए परंपरागत उर्दू शायरी से भिन्न प्रकृति की हैं। मतले की दोनों पंक्तियों के बाद तथा शेर की दूसरी पंक्तियों में निरंतर आने वाले शब्द समूह को रदीफ कहते हैं और रदीफ से पहले आने वाले शब्द या स्वर को काफिया कहते हैं। त्रिलोचन की ग़ज़लों में इनका सफल प्रयोग हुआ हैः

मेरा दिल व' दिल है कि हारा नहीं है
कहीं तिनके का भी सहारा नहीं हैं

जो मौजों को देखा तो जी ही न माना
य' मालूम था यह किनारा नहीं है[93]

शमशेर ने भी अपनी ग़ज़लों में अधिकतर उर्दू के परंपरागत रदीफ–काफिए बाँधें हैं। दो ग़ज़लें ही उन्होंने ठेठ खड़ी बोली के रदीफ में बाँधी हैं। शमशेर ने रदीफ़–काफ़िए का सफल निर्वाह किया हैः

वो दुश्मन मेरा इतना अच्छा है क्यों
जो अपना नहीं है वो अपना है क्यों।

मुझे बादशाहत नहीं चाहिए
मगर तू ही कुल मेरी दुनिया है क्यों।[94]

इस ग़ज़ल में शमशेर ने 'हैं क्यों' रदीफ के साथ अच्छा, अपना, दुखिया का काफ़िया बाँधा है। लेकिन शमशेर ने अधिकतर अपनी ग़ज़लों में छोटा काफिया बाँधा हैं। जिनमें उन्होंने केवल 'आ' स्वर का ही काफ़िया पकड़ा है। जैसेः

अपने दिल का हाल यारो, हम किसी से क्या कहें
कोई भी ऐसा नहीं मिलता जिसे अपना कहें।[95]

उक्त शेर में 'अपना' दोबारा में 'आ' का स्वर ही काफ़िया बना रहा है।

ग़ज़ल के आखरी शेर को मकता कहते हैं। इसमें शायर अपना नाम या उपनाम प्रस्तुत करता है। इसके बाद ग़ज़ल समाप्त हो जाती है। त्रिलोचन ने अपनी अधिकतर ग़ज़लों में सफलतापूर्वक मकते का प्रयोग किया है। उदाहरण देखिएः

कैसे कहा था तू ने त्रिलोचन
इष्ट आप ही आ मिलता है[96]

या

कच्चे ही हो अभी त्रिलोचन तुम
धुन कहाँ वह सँभल के आई है[97]

शमशेर के यहाँ भी मकते का सफल निर्वाह हुआ है। वह अपने नाम शमशेर या उपनाम शम्स का प्रयोग मकते में करते हैं। उदाहरण दखिएः

बहुत नाम हैं एक 'शमशेर' भी है
किसे पूछते हो किसे हम बताएँ[98]

या

कौन उठाए उसके नाज़, दिल तो उसी के पास है
'शम्स' मज़े में हैं कि हम इश्क में मुब्तिला नहीं[99]

ग़ज़ल का सबसे अनिवार्य तत्त्व होता है उसका बहर में होना। जिन ग़ज़लों में बहर का निर्वाह नियमानुसार नहीं होता उन्हें ग़ज़ल की श्रेणी में नहीं रखा जाता है। डॉ. नरेश के अनुसार, ''शेर का दूसरा अनिवार्य तत्त्व लय है, जिसे बहर या वज़न कहा जाता है। लय ही है जो कविता को गद्य से अलग करती है। लय के अभाव में कविता की रचना सम्भवतः नहीं होती है। शेर के सम्बन्ध में लय का महत्त्व इसलिए भी अधिक होता है क्योंकि शेर की रचना ग़ज़ल के लिए निश्चित किए गए लयखण्ड में ही की जाती है। पूरी ग़ज़ल का किसी एक लयखण्ड से रचा जाना अनिवार्य होता है।''[100]

त्रिलोचन और शमशेर दोनों के यहाँ बहरों का निर्वाह दिखाई देता है। त्रिलोचन और शमशेर दोनों ने प्रायः प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है। दोनों ने छोटी–बड़ी दोनों तरह की बहरों में ग़ज़लों लिखी हैं। जहाँ छोटी बहरों की ग़ज़लें लिखने में दोनों काफी हद तक सफल रहे हैं परंतु बड़ी बहरों की ग़ज़लों में दोनों के यहाँ दोष पाया जाता हैं। त्रिलोचन के यहाँ बहर संबंधी दोष शमशेर की अपेक्षा अधिक देखने को मिलते हैं। जबकि शमशेर की बहर संबंधी दृष्टि अधिक मुकम्मिल है। जहाँ तक ग़ज़ल की मूल आत्मा का प्रश्न है तो वह त्रिलोचन की अपेक्षा शमशेर अपनी ग़ज़लों में सुरक्षित रख पाने में सफल हुए हैं। त्रिलोचन ने ग़ज़लों में प्रयोग किया जो आगे आने वाले ग़ज़लकारों के लिए मार्ग प्रशस्ति का कार्य करता है।

संदर्भ सूची

[1] जानकी प्रसाद शर्मा, **उर्दू साहित्य की परंपरा,** पृ. 229

[2] रामप्रसाद शर्मा 'महर्षि', **ग़ज़ल और ग़ज़ल की तकनीक**, पृ.29

[3] टेरी ईगलटन, **मार्क्सवाद और साहित्यलोचन,** पृ.37

[4] वही, पृ.38

[5] डॉ. नरेश, **हिंदी ग़ज़लः दशा और दिशा**,, पृ.51

[6] सरदार मुज़ावर (सं.), **हिंदी ग़ज़ल : ग़ज़लकारों की नज़र में**, पृ.30

[7] त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल**, फ्लैप से उद्धृत

[8] राजू.एम.फिलीप, **त्रिलोचन के काव्य,** पृ.65

[9] महावीर अग्रवाल (सं.), **शमशेर : कवि से बड़ा आदमी,** पृ. 266

[10] डॉ. नरेश, **हिंदी ग़ज़लः दशा और दिशा,** पृ.68

[11] गोबिंद प्रसाद, **कविता के सम्मुख,** पृ.104

[12] वही, पृ.128

[13] त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल**, पृ.92

[14] गोबिंद प्रसाद, **त्रिलोचन के बारे में,** पृ.203

[15] वही, पृ.203

[16] त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल**, पृ.78

[17] वही, पृ.105

[18] रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **सुकून की तलाश**, पृ.26

[19] वही, पृ.16

[20] वही, पृ.14

[21] वही, पृ.24

[22] वही, पृ.33

[23] वही, पृ.38

[24] सविता भार्गव, **कवियों के कवि शमशेर**,, पृ.121

[25] त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल**, पृ.27

[26] वही, पृ.39

[27] वही, पृ.59

[28] जीवन प्रकाश जोशी, **त्रिलोचन की कविता यात्रा**, पृ.79

[29] त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल**, पृ.30

[30] वही, पृ.42

[31] वही, पृ.24

[32] वही, पृ.61

[33] रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **सुकून की तलाश**, पृ.33

[34] वही, पृ.33

[35] वही, पृ.18

[36] वही, पृ.29

[37] वही, पृ.45

[38] त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल**, पृ.55

[39] रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **सुकून की तलाश**, पृ.40

[40] त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल**, पृ.49

[41] वही, 67

[42] डॉ. वीरेन्द्र सिंह, **बिंब में झाँकता कवि शमशेर**, पृ.39

[43] रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **सुकून की तलाश**, पृ.18

[44] वही, पृ.19

[45] त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल**, पृ.18

[46] वही, पृ.30

[47] वही, पृ.55

[48] वही, पृ.58

[49] वही, पृ.85

[50] वही, पृ.91

[51] रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **सुकून की तलाश**, पृ.27

[52] वही, पृ.28

[53] वही, पृ.45

[54] वही, पृ.108

[55] वही, पृ.111

[56] वही, पृ.14

[57] वही, पृ.16

[58] वही, पृ.18

[59] त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल**, पृ.54

[60] वही, पृ.23

[61] वही, पृ.77

[62] वही, पृ.82

[63] वही, पृ.56

[64] रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **सुकून की तलाश**, पृ.19

[65] वही, पृ.22

[66] वही, पृ.33

[67] वही, पृ.35

[68] वही, पृ.22

[69] वही, पृ.25

[70] त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल**, पृ.49

[71] वही, पृ.83

[72] वही, पृ.94

[73] रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **सुकून की तलाश**, पृ.21

[74] वही, पृ. 18

[75] वही, पृ.107

[76] वही, पृ.112

[77] त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल**, पृ.56

[78] वही, पृ.60

[79] वही, पृ.32

[80] वही, पृ.51

[81] वही, पृ.47

[82] वही, पृ.111

[83] वही, पृ.106

[84] वही, पृ.101

[85] वही, पृ.61

[86] रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **सुकून की तलाश**, पृ.13

[87] वही, पृ.31

[88] वही, पृ.40

[89] वही, पृ.36

[90] वही, पृ.17

[91] त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल**, पृ.26

[92] रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **सुकून की तलाश**, पृ.24

[93] त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल**, पृ.30

[94] रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **सुकून की तलाश**, पृ.31

[95] वही, पृ.14

[96] त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल**, पृ.21

[97] वही, पृ.29

[98] वही, पृ.18

[99] वही, पृ.20

[100] डॉ. नरेश, **हिंदी ग़ज़लः दशा और दिशा**, पृ.31

उपसंहार

हिंदुओं और मुसलमानों के बीच मेलजोल की साझा संस्कृति की बिना पर उर्दू भाषा का जन्म हुआ। हिंदी और उर्दू इन दोनों भाषाओं का प्रभाव एक दूसरे पर पड़ता रहा है। इन दोनों भाषाओं के साहित्य के विकास में इस प्रभाव का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। हिंदी भाषा और उसके साहित्य में उर्दू भाषा एवं उसके साहित्य ने कुछ नए आयाम जोड़े हैं, तो वहीं उर्दू भाषा एवं उसके साहित्य में हिंदी भाषा और उसके साहित्य को भी समृद्ध किया है। साथ ही हिंदी ने उर्दू में भारतीय तत्वों को समाहित करने का भी महत्वपूर्ण कार्य किया है। परंतु समय–समय पर इन दोनों भाषाओं के बीच विवाद खड़ा करने का प्रयास होता रहा है।

भाषा एक सामाजिक व्यवहार की वस्तु है। इसका समाज से गहरा संबंध होता है। शासक वर्ग भी अपनी नीतियों का प्रचार–प्रसार इसी भाषा के माध्यम से करता है। जहां भाषा समाज को जोड़ने का कार्य करती है क्योंकि यह सांस्कृतिक एवं सामाजिक रूप से उसके प्रयोग करने वालों से जुड़ी होती है, वहीं शासक वर्ग इस भाषा को लोगों में आपसी भेद पैदा करने एवं अपनी नीतियों को प्रयोग में लाने के लिए हथियार के रूप में प्रयोग में लाता है।

ब्रिटिश शासन के दौरान शासन व्यवस्था ने अपने फायदे के लिए हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं के बीच भेद पैदा करने के प्रयास किए। उन्होंने विभिन्न तरीके अपनाकर हिंदी खड़ी बोली को हिंदुओं की भाषा तथा उर्दू को मुसलमानों की भाषा के रूप में बांट कर देखने, दिखाने का प्रयास किया और दोनों भाषाओं के बीच भेद खड़ा कर दिया। परंतु दोनों भाषाओं के साहित्यकारों ने इन संकीर्ण विचारों के खिलाफ लड़ाई लड़कर इन दोनों भाषाओं को करीब लाने का प्रयास किया। इसी कारण हम देखते हैं कि इन दोनों भाषाओं ने एक दूसरे के विकास में सृजनात्मक योगदान दिया है।

इन दोनों भाषाओं को जोड़ने की एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में हम ग़ज़ल विधा को देख सकते हैं। 'ग़ज़ल' अरबी फारसी से होती हुई उर्दू में आई और इसने उर्दू में आकर लोकप्रियता की बुलंदियों के शिखर को छुआ। इसी लोकप्रियता के प्रभावस्वरूप, आधुनिक हिंदी साहित्य के निर्माता भारतेंदु ने हिंदी में ग़ज़ल विधा का प्रारंभ किया। हिंदी भाषा के विकास के लिए भारतेंदु ने कई नई विधाओं का सूत्रपात अपने प्रयोगात्मक दृष्टिकोण के तहत किया। भारतेंदु ने गद्य लेखन के लिए खड़ी बोली को स्थापित किया, परंतु पद्य में अभी तक ब्रजभाषा का भी प्रयोग किया जा रहा था।

ब्रजभाषा आधुनिक भारतीय समाज में जागृत हुई नवीन चेतना और विचारों को वहन करने में कहीं असमर्थ प्रतीत होने लगी थी जिसके फलस्वरूप भारतेंदु ने आम जनता में व्यापक तौर पर प्रयोग में लाई जाने वाली खड़ी बोली को साहित्यिक भाषा के रूप में स्थापित करने में सफल हो गए, परंतु पद्य में ये कार्य अभी बाकी था। उन्होंने खड़ी बोली में कुछ कविताएँ भी लिखी परंतु वह स्वयं उन्हें जंची नहीं। अतः इस दिशा में वे कोई यथोचित प्रयास नहीं कर पाए। बेशक भारतेंदु कविता के क्षेत्र में खड़ी बोली को उस रूप में स्थापित करने में सफल न हो पाए हों परंतु ग़ज़ल लेखन के क्षेत्र में उन्होंने खड़ी बोली का सफल प्रयोग किया।

उर्दू में ग़ज़ल की लोकप्रियता से प्रभावित होकर और पद्य में खड़ी बोली के प्रयोग स्वरूप, भारतेंदु ने हिंदी भाषा में ग़ज़लें लिखीं। साथ ही यह हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं को करीब लाने का एक माध्यम भी थी। भारतेंदु और उनके मंडल के साहित्यकारों ने अपने को इस संकीर्णता से बचाया कि वे उर्दू–फारसी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग न करें तथा इन भाषाओं के बीच दूरी बरकरार रखें। अपितु इन्होंने ऐसी साहित्यिक भाषा का प्रचार–प्रसार किया जो आम जन की दैनिक बोलचाल की भाषा थी।

भारतेंदु ने ग़ज़ल विधा को हिंदी में लाकर दोनों भाषाओं को अलगाने वाले संकीर्ण विचारों पर चोट कर इन्हें नज़दीक लाने का प्रयास किया। भारतेंदु ने उर्दू, फारसी की

चली आ रही ग़ज़ल परंपरा के अनुसार ही ग़ज़लें लिखीं। उनकी ग़ज़लों पर उर्दू की परंपरागत ग़ज़लों का ही प्रभाव दिखता है। परंतु इन्होंने कुछ ग़ज़लें हिंदी भाषा के अनुरूप उसकी अपनी ज़मीन पर खड़े होकर लिखीं, जिनमें भाषागत रूप से लेकर शिल्पगत रूप तक हिंदी की अपनी छटा दिखाई पड़ती है। इन ग़ज़लों को हम हिंदी ग़ज़ल के आधार के रूप में देख सकते हैं।

भारतेंदु के ग़ज़ल विधा को अपनाने तथा उसे हिंदी में लाने के प्रयासस्वरूप हम देखते हैं कि न केवल उनके समकालीन कवियों का रुझान इस विधा की ओर बनता है बल्कि उनके बाद हम ग़ज़ल लेखन की एक सुदीर्घ परंपरा भी पनपते हुए देखते हैं। द्विवेदी युग में श्रीधर पाठक, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', छायावादी युग में जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और बाद में शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन, दुष्यंत कुमार आदि से लेकर आज के हिंदी ग़ज़लकारों तक हिंदी ग़ज़ल लेखन का एक विकास क्रम दिखाई देता है।

भारतेंदु से लेकर दुष्यंत कुमार से पहले हिंदी के कवियों द्वारा जो ग़ज़लें लिखी गईं उनमें से अधिकतर उर्दू–फारसी की परंपरा के अनुसार ही लिखी गईं। हालांकि कुछ ग़ज़लकारों ने प्रयोगस्वरूप अलग तरह की ग़ज़लें भी लिखीं, जिनमें प्रसाद की संस्कृतनिष्ठ शैली की ग़ज़लें तथा त्रिलोचन की हिंदी की ज़मीन से जुड़ी ग़ज़लें उल्लेखनीय हैं।

दुष्यंत से पहले ग़ज़ल विधा हिंदी में उस रूप में ख्याति हासिल नहीं कर पाई जिस रूप में दुष्यंत के आगमन के पश्चात हिंदी ग़ज़ल ने प्राप्त की। दरअसल दुष्यंत से पूर्व हिंदी कवियों ने केवल इस विधा में अपना कौशल दिखाने के लिए ही ग़ज़ल लेखन किया। उनका ग़ज़ल लेखन से उस रूप में कोई बुनियादी सरोकार नहीं रहा। उन्होंने इस विधा को अपनी मुख्य विधा के रूप में नहीं अपनाया। वे मुख्य रूप से कवि के रूप में ही जाने जाते रहे। परंतु दुष्यंत ने ग़ज़ल विधा को अपने बुनियादी या मूल लेखन की विधा के रूप में अपनाया, जिसके कारण वह कवि से अधिक ग़ज़लकार के

व्यक्तित्व को जीते हैं। इसलिए वह ग़ज़लविधा को उस मुक़ाम तक पहुँचाने में सफल हुए जहाँ तक अन्य कवि उसे नहीं ले जा पाए।

दुष्यंत कुमार हिंदी ग़ज़ल लेखन के परंपरा पुरुष के रूप में उभर कर सामने आते हैं। उन्होंने हिंदी ग़ज़ल को उर्दू–फारसी की चली आ रही परंपरागत परिपाटी से मुक्त कराकर सामाजिक, राजनीतिक यथार्थ से जुड़े मुद्दों तथा आधुनिक चेतना के संदर्भों से जोड़ा। उन्होंने हिंदी ग़ज़ल लेखन के लिए आमफ़हम की भाषा का प्रयोग कर ग़ज़ल को हिंदी भाषा में भी लोकप्रियता की बुलंदियों पर पहुँचा दिया, जिसके चलते हिंदी में ग़ज़ल लेखन एक गंभीर कार्य के रूप में अपनी जगह बना पाया तथा हिंदी के कवि इस विधा को साधने को अग्रसर हुए।

ग़ज़ल विधा ने हिंदी में जैसे–जैसे ख्याति प्राप्त करनी शुरू की वैसे–वैसे इसको लेकर कुछ बहसें एवं अलग–अलग दृष्टियाँ भी सामने आने लगीं। जैसे विभिन्न विधाओं के विकास क्रम में हम देखते हैं कि उनसे जुड़ी विभिन्न प्रकार की बहसें खड़ी होती हैं, वैसे ही हिंदी ग़ज़ल भी इससे अछूती नहीं रही है। यह बहसें ग़ज़ल विधा के शिल्प से लेकर उसकी उत्पत्ति, नामकरण, कथा, सीमा और उसके अविषय तक को लेकर उत्पन्न हुई हैं।

किसी भी विधा को परिपक्व बनाने में अक्सर ये बहसें सहायक भूमिका निभाती हैं और जब तक यह बहसें विधा के विकास में सहायक रहें तभी तक ये लाभप्रद होती हैं, अन्यथा यदि वे उसके विकास में बाधा पहुँचाएँ तो हानिकारक साबित होती हैं। अतः हम देखते हैं कि कई बार हिंदी ग़ज़ल को लेकर खड़ी की गई बहसें इस स्तर तक पहुँच जाती हैं कि वो उसके विकास में बाधा पहुँचाने की स्थिति में आ जाती हैं। जैसे कि हिंदी भाषा में ग़ज़ल की उत्पत्ति के प्रश्न पर उठी बहस, जिसमें ग़ज़ल लेखन के आरंभ को अमीर खुसरो एवं कबीर से जोड़कर यह दिखाने का प्रयास किया गया कि हिंदी ग़ज़ल उर्दू ग़ज़ल से भी पुरानी है तथा इसने परंपरा स्वरूप उर्दू ग़ज़ल से कुछ भी ग्रहण नहीं किया। आप बेशक हिंदी ग़ज़ल को उर्दू ग़ज़ल से पुराना सिद्ध कर दें,

परंतु जो एक भाषा की दूसरी भाषा की देन है, उसे स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। यह सर्वविदित है कि हिंदी में ग़ज़ल लेखन उर्दू ग़ज़लों की लोकप्रियता के कारण आरंभ हुआ। दरअसल कुछ संकीर्ण विचार के लोग इस विधा को पूरी तरह उर्दू की परंपरा से अलग करके देखने के पक्ष में हैं। इसलिए वह इसे उर्दू से अलगाने का हर संभव प्रयास करते हैं, चाहे वह इसको नए–नए नाम देकर हो या फिर इसके शिल्प एवं इसकी भाषिक शब्दावली को पूरी तरह बदल कर ही क्यों न हो। यह करते वक़्त वह यह भूल जाते हैं कि ऐसा करने पर वह ग़ज़ल विधा की आत्मा को ही मार दे रहे हैं। दरअसल जैसा कि कमलेश्वर ने लिखा है, ''साहित्य की हर विधा का जन्म सांस्कृति, भौगोलिक और मनुष्य के भीतर छुपी रचनात्मक शक्ति के माध्यम से होता है।''[1] उसी प्रकार ग़ज़ल विधा भी हिंदी में उसके सांस्कृतिक आधार के तैयार होने पर ही उत्पन्न हुई है, जिसे बनाने में उर्दू ग़ज़ल की महत्वपूर्ण भूमिका रही है जिसे कतई नकारा नहीं जा सकता।

ग़ज़ल एक ऐसा सिन्फ है जो देखने में बहुत सरल प्रतीत होता है, परंतु असल में यह एक कठिन विधा है। अतः कुछ हिंदी के ग़ज़लकार इसके शिल्प को साध पाने में असमर्थ हुए हैं तो उन्होंने इसके शिल्प में परिवर्तन करने की वकालत की और अपनी ऐसी रचनाओं को जो ग़ज़ल विधा के शिल्पगत अनुशासन को पूरा नहीं करतीं, उन्हें हिंदी ग़ज़ल के नाम पर ग़ज़ल की श्रेणी में रखने का प्रयास किया। ग़ज़ल के शिल्प का अनुसरण न करना और उसके लिए अलग शिल्प की ग़ज़लों की वकालत करना निरर्थक है। ग़ज़ल लेखन के लिए उसके शिल्प का अनुसरण करना तो अनिवार्य है।

ग़ज़ल विधा को लेकर एक बहस यह भी खड़ी होती रही है कि यह एक सामंती विधा है तथा इसमें कोई एक सुसंबद्ध मुख्य विचार नहीं होता यह असंबद्ध विचारों की शृंखला मात्र है। इसलिए यह आधुनिक नवीन चेतना को व्यक्त करने में असमर्थ होगी। परंतु न केवल आधुनिक उर्दू ग़ज़ल बल्कि हिंदी ग़ज़ल ने भी अपने को सामाजिक सरोकारों से जोड़कर इस बहस को भी झुठला दिया है। ग़ज़ल विधा विभिन्न बहसों को बावजूद निरंतर लोकप्रियता हासिल करती रही है। कई बार लोकप्रियता को स्तर

हीनता के साथ जोड़कर भी देखा जाता है। ऐसा माना जाता है कि जो लोकप्रियता है, वह कलात्मक व संवेदनात्मक रूप से उत्कृष्ट नहीं है। परंतु ऐसा नहीं है। लोकप्रियता का मतलब स्तरहीनता नहीं होता। मैनेजर पाण्डेय के अनुसार, ''जो कला या कलाकृति व्यापक जन समुदाय में लोकप्रिय नहीं है, उसे कलात्मक कहना कला के अर्थ को सीमित, संकुचित और भ्रष्ट करना है।''[2] कोई भी विधा या कलाकृति जब लोकप्रिय होती है तो वह जनता में गहरे तक पैठ जाती है। उसी प्रकार ग़ज़ल भी जनता में गहरे तक उतरी हुई है और आधुनिक हिंदी ग़ज़ल ने तो दुष्यंत जैसे ग़ज़लकारों के माध्यम से अपने को व्यापक समाज के शोषित–उत्पीड़ित तबके के सरोकारों से जोड़कर अपनी महत्ता को उजागर कर दिया है। हिंदी ग़ज़ल में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति एक महत्वपूर्ण विषय है। इसी कारण हिंदी ग़ज़ल परंपरागत आशिक–माशूक के विषयों से निकलकर मनुष्य मात्र एवं प्राणिमात्र से बातचीत करने की स्थिति में आ पाई है। इनमें समाज अपनी संपूर्ण विसंगतियों, विडंबनाओं, विद्रूपताओं तथा अंतर्विरोधों के साथ उजागर हुआ है।

इस आधुनिक हिंदी ग़ज़ल के लिए अनुकूल ऊपजाऊ भूमि तैयार करने में शमशेर बहादुर सिंह और त्रिलोचन शास्त्री का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इनसे प्रभावित होकर अनेक कवियों ने हिंदी ग़ज़लें लिखीं। दुष्यंत स्वयं अपने को शमशेर की ग़ज़लों से प्रभावित मानते हैं। वह स्वीकारते हैं कि उन पर शमशेर की ग़ज़लों का प्रभाव पड़ा।

शमशेर और त्रिलोचन दोनों समकालीन कवि हैं। दोनों ने ही हिंदी में ग़ज़लें लिखीं परंतु दोनों ही कवियों की संवदेना का धरातल एकदम अलग–अलग है। शमशेर ने उर्दू–फारसी की परंपरागत ग़ज़लों से ही अपनी संवदेना ग्रहण की है। उनकी ग़ज़लों में परंपरागत उर्दू शायरी की भांति आशिक–माशूक के प्रेम प्रधान विषय हैं। उनकी ग़ज़लों में वही शोखी, नज़ाकत, नफ़ासत और ग़ज़ल का वही लहज़ा दिखाई देता है जो उर्दू की परंपरागत ग़ज़लों का है। शमशेर का लहज़ा वैसा ही दिखाई देता है, जो उर्दू की परंपरागत ग़ज़लों का है। शमशेर की ग़ज़लों में रूमानियत है, इस रूमानियत

की विभिन्न भंगिमाएं हैं, जो उर्दू की क्लासिक ग़ज़ल से ली गई हैं। उनकी ग़ज़लें पारंपरिक ग़ज़लों का सांचा लिए हुए हैं।

शमशेर की ग़ज़लों में हमें उर्दू के शायर मीर, सौदा और ग़ालिब आदि का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। वह ग़ालिब से तो इतना प्रभावित हैं कि वह स्वयं इसे स्वीकारते हैं कि ग़ालिब उनकी ग़ज़लों में कभी भी चले आते हैं। उनकी ग़ज़लों में अधिकतर प्रेमपरक ग़ज़लें ही हैं। उनका मूल स्वर रूमानी ही रहा है। उनकी ग़ज़लें उर्दू की प्रकृति की ग़ज़लें हैं, अगर उनकी लिपि बदल दी जाए तो वे उर्दू की ग़ज़लें ही कही जाएंगी।

इसके विपरीत त्रिलोचन ने जो ग़ज़लें लिखी हैं, वह हिंदी की प्रकृति की ग़ज़लें हैं। उनकी ग़ज़लों की संवेदना का धरातल उर्दू–फारसी की ग़ज़लों का नहीं हैं अपितु यह हिंदी में ग़ज़ल की नई भूमि तलाशने का प्रयास है। ये ग़ज़लें हिंदी की जातीय परंपरा की ग़ज़लें हैं। त्रिलोचन ग़ज़लों के लिए एक नई भावभूमि तलाश कर उसे तैयार करने का कार्य करते हैं। उनकी ग़ज़लों में दुख, अवसाद और अभाव का स्वर ज़्यादा मुखर है। उनकी ग़ज़लों में सामाजिक विसंगतियों और उसे यथार्थ की विभिन्न भंगिमाएँ देखने को मिलती हैं। उनकी ग़ज़लों में प्रेम का भाव शमशेर से अलग है। उनकी ग़ज़लों में प्रेम में न्योछावर या मिट जाने का भाव ज़्यादा है। उनमें उर्दू ग़ज़ल की जो शोखी एवं नज़ाकत है, वह दिखाई नहीं पड़ती। त्रिलोचन का जो रंग है वह एकदम निराला है। वह निराला है, इसलिए प्रचलित भी नहीं है। वह हिंदी ग़ज़ल का सांचा तैयार करते हैं।

त्रिलोचन के यहाँ सामाजिक यथार्थ से जुड़े विषय अधिक देखने को मिलते हैं। इन्होंने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार किया है। इन ग़ज़लों में अभाव से उत्पन्न पीड़ा है, राजनीतिक और सामाजिक स्थितियों पर व्यंग्य है। यह ग़ज़लें उर्दू की परंपरागत ग़ज़लों की भांति नज़ाकत, नफ़ासत एवं शोखी से भरी हुई नहीं हैं, इनमें तो समाज की तल्ख़ सच्चाइयाँ व्यक्त हुई हैं।

ऐसा नहीं है कि शमशेर के यहाँ केवल प्रेम एवं रूमानियत है और त्रिलोचन के यहाँ केवल सामाजिक यथार्थ ही है। शमशेर ने प्रेम के अलावा सामाजिक यथार्थ, राजनीतिक विसंगति आदि विषयों पर ग़ज़लें लिखने के साथ–साथ प्रकृति विषयक ग़ज़लें भी लिखी हैं। शमशेर की ग़ज़लों में हमें विभिन्न प्रकार की भावभूमि दिखाई पड़ती है। उसमें कभी उनकी ग़ज़लों में एक प्रकार की तलाश दिखाई पड़ती है, तो कभी स्वयं से आत्मालाप करते दिखाई देते हैं। कहीं वह मृत्यु का प्रेमिका के रूप में इंतज़ार करते प्रतीत होते हैं, तो कहीं वह प्रकृति से बतियाते दिखते हैं। इस तरह उनकी ग़ज़लों में हमें कई रंग देखने को मिलते हैं। हालाँकि उन सब में उनका रूमानी रंग सबसे ज़्यादा प्रखर है।

इस प्रकार त्रिलोचन के यहाँ भी हमें कई तरह के रंग दिखाई पड़ते हैं। उनकी ग़ज़लों में भी प्रेम व रूमानियत दिखाई देती है, परंतु वे उसमें भी यथार्थ के धरातल को नहीं छोड़ते। उनकी ग़ज़लों में प्रकृति गांव से जुड़कर, किसानी जीवन से जुड़कर जीवंत हुई है और कई रंगों में सामने आई है। उन्होंने प्रकृति का सूक्ष्म वर्णन किया है, बसंत ऋतु का तो विशेषकर बहुत ही सुंदर ढंग से उनकी ग़ज़लों में आगमन हुआ है। त्रिलोचन की ग़ज़लों में भी आत्मालाप दिखाई देता है, वह आत्मालाप दुख और अवसाद की स्थिति से उपजा है। उनके यहाँ मृत्यु का भय दिखाई नहीं देता। वहाँ सिर्फ़ जीवन ही जीवन और उसकी सच्चाइयाँ, उसके संघर्ष दिखाई देते हैं। उनकी ग़ज़लों की भावभूमि भी विविध रंग लिए हुए है, परंतु वहाँ ताप के ताए हुए दिन ही अधिक मिलते हैं।

शिल्प की दृष्टि से भी शमशेर और त्रिलोचन की ग़ज़लें भिन्न प्रकृति की हैं। हालाँकि शमशेर और त्रिलोचन दोनों ने ही ग़ज़ल विधा के शिल्प उसके तत्वों और उसके अनुशासन का पालन किया है। शमशेर के यहाँ उर्दू के परंपरागत शिल्प विधान की ही झलक दिखाई देती है, उन्होंने उसमें कहीं परिवर्तन करने या उसे भंग करने का प्रयास नहीं किया है। जबकि त्रिलोचन के यहाँ शिल्पगत प्रयोग दिखाई देते हैं, जिसके कारण उनकी ग़ज़लों में वह सौंदर्य दिखाई नहीं देता जो शमशेर के यहाँ

देखने को मिलता है। उनकी ग़ज़लों में बहर दोष भी अधिक देखने को मिलता है, जिससे लय बार–बार टूटती है, ग़ज़ल का नाद सौंदर्य भंग होता है। शमशेर के यहाँ भी बहर दोष पाया जाता है, परंतु यह काफ़ी कम ही दिखता है और ग़ज़ल के सौंदर्य को भी भंग नहीं करता।

शमशेर ने अपनी ग़ज़लों में उर्दू–फारसी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है, कहीं–कहीं यदि कठिन शब्दों का प्रयोग भी किया है तो वे ग़ज़ल के सौंदर्य, उसकी रवानी को भंग नहीं करते, बल्कि और भी बढ़ा देते हैं। उनमें क्लासिक उर्दू ग़ज़लों की भांति भाषा की लोच, नफ़ासत आदि बरकरार दिखती है। उन्होंने उर्दू के मुहावरों का प्रयोग कर भाषा में और भी कसाव पैदा किया है, जिससे उनकी ग़ज़लों का सौंदर्य और भी बढ़ गया है।

जबकि त्रिलोचन की ग़ज़लों में ठेठ हिंदी भाषा का प्रयोग हुआ है। उन्होंने हिंदी के ठेठ मुहावरों का भी प्रयोग किया है। उनकी ग़ज़लों में संस्कृत के बहुत से कठिन शब्द देखने को मिलते हैं, जो ग़ज़ल जैसी नाज़ुक सिन्फ के लिए अनुकूल नहीं है। इससे उसकी भाषा की लोच समाप्त हो जाती है। इससे ग़ज़लों का सौंदर्य भी भंग हुआ है।

शमशेर की तुलना में त्रिलोचन की ग़ज़लों में शिल्पगत दोष अधिक पाए जाते हैं, परंतु त्रिलोचन ग़ज़ल को हिंदी के सांचे में ढालने का कार्य कर रहे थे, इसलिए यह शिल्पगत दोष आना स्वाभाविक ही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शमशेर और त्रिलोचन की ग़ज़लों में कई भिन्नताएं और कई स्तर पर समानताएं मौजूद हैं। शमशेर हिंदी और उर्दू भाषा के मेल–जोल को आगे बढ़ाने का कार्य कर रहे थे। वे दोनों भाषाओं की मेल–जोल की संस्कृति के प्रतीक हैं। वह स्वयं कहते हैं:

मैं उर्दू और हिंदी का दोआब हूँ
मैं वह आईना हूँ जिसमें आप हैं[3]

इस तरह शमशेर की ग़ज़लें हिंदी और उर्दू के दोआब की ग़ज़लें हैं, जबकि त्रिलोचन की ग़ज़लें हिंदी की जातीय परंपरा की तलाश की ग़ज़लें हैं। त्रिलोचन की ग़ज़लें भारतीय जनमानस के सांस्कृतिक और भाषागत संस्कार को पहचानने की ग़ज़लें हैं। उनकी ग़ज़लें हिंदी के सांचे में ढली हुई हिंदी की अपनी ज़मीन की तलाश की ग़ज़लें हैं। अपनी ग़ज़लों के विषय में वह कहते हैं, ''जो काम मैं कर रहा हूँ वह औरों के ध्यान में नहीं है।...मैं ग़ज़ल को भारतीय स्वभाव देना चाहता हूँ।...उर्दू के टेस्ट से देखने वाले मुझे नाकामयाब कहेंगे, मैं नहीं।''[4]

त्रिलोचन की ग़ज़लें हिंदी के स्वभाव की ग़ज़लें हैं। यह ग़ज़लें हिंदी की ग़ज़लों के लिए आधार तैयार करने के लिए लिखी गई हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि दोनों की ग़ज़लें भिन्न प्रकृति की हैं और दोनों ग़ज़लकारों का उद्देश्य भी ग़ज़ल लेखन के प्रति अलग–अलग रहा है। इसलिए दोनों की ग़ज़लें भी अलग–अलग स्वभाव लिए हुए हैं। इन दोनों ग़ज़लकारों के बाद आगे विकसित हुई हिंदी ग़ज़ल को देखते हुए हम कह सकते हैं कि उसने अपने इन ग़ज़लकारों से काफ़ी कुछ हासिल किया है और उनको अपने–अपने मकसदों में कामयाब भी बनाया है।

संदर्भ सूची

[1] सरदार मुजावर (सं.), **हिंदी ग़ज़ल की नई दिशाएं**, पृ.*vii*

[2] मैनेजर पाण्डेय, **शब्द और कर्म,** पृ.116

[3] रेवती रमण, 'आदमी की अमरता कवि है', **आलोचना**, अंक–40, जनवरी–मार्च, 2011

[4] दिविक रमेश, **नए कवियों के काव्य–शिल्प–सिद्धांत,** पृ. 376

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ

शमशेर बहादुर सिंह, रंजना अरगड़े (सं.) **सुकून की तलाश**, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1998

त्रिलोचन, **गुलाब और बुलबुल**, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1985

सहायक ग्रंथ

अयोध्या प्रसाद गोयलीय, **शेर-ओ-सुख़न, पहला भाग,** भारतीय ज्ञानपीठ, 1999

असगर वजाहत, **हिंदी उर्दू की प्रगतिशील कविता**, मैक्मिलन इंडिया लि., 1981

आचार्य रामचंद्र शुक्ल, **हिंदी साहित्य का इतिहास**, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2005

आशीष त्रिपाठी (सं.), नामवर सिंह, **कविता की ज़मीन और ज़मीन की कविता**, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011

ओमप्रकाश शर्मा (सं.), **बशीर बद्र: मुहब्बत ख़ुशबू है**, परिचित बुक्स, 2009

ओमप्रकाश सिंह (सं.), **भारतेंदु हरिश्चंद्र ग्रंथावली भाग-1**, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2008

ओमप्रकाश सिंह (सं.), **भारतेंदु हरिश्चंद्र ग्रंथावली भाग-3**, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2008

कमलाकांत द्विवेदी, दिविक रमेश, **साक्षात् त्रिलोचन**, सिद्धार्थ पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1990

केदारनाथ सिंह (सं.), त्रिलोचन, **प्रतिनिधि कविताएं**, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2008

क्रिस्टोफर कॉडवेल, **विभ्रम और यथार्थ** (अनु. भगवान सिंह), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990

गोबिंद प्रसाद (सं.), **त्रिलोचन के बारे में**, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994

गोबिंद प्रसाद, **कविता के सम्मुख**, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002

चानन गोविंदपुरी, **ग़ज़ल: एक अध्ययन**, सी. आर. पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1980

जानकी प्रसाद शर्मा, **उर्दू साहित्य की परंपरा**, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001

जीवन प्रकाश जोशी, **त्रिलोचन की कविता यात्रा**, संधान प्रकाशन, दिल्ली, 1983

ज्ञान प्रकाश विवेक, **हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा**, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2006

टेरी ईगल्टन, **मार्क्सवाद और साहित्यलोचन** (अनु. वैभव सिंह), आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2006

डॉ. गिरीश जे. त्रिवेदी, **दुष्यंत कुमार: व्यक्तित्व एवं कृतित्व**, शांति प्रकाशन, दिल्ली, 2003

डॉ. तिलक राज शर्मा, **नई कविता का सौंदर्यबोध**, संजय प्रकाशन, दिल्ली, 2010

डॉ. नगेंद्र, डॉ. सुरेशचंद्र गुप्त (सं.), **हिंदी साहित्य का इतिहास**, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, 2000

डॉ. नरेश, **हिंदी ग़ज़ल: दशा और दिशा**, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004

डॉ. बच्चन सिंह, **हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास**, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009

डॉ. मैनेजर पाण्डेय, **साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका**, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2006

डॉ. राजेंद्र प्रसाद, **अज्ञेय: कवि और काव्य**, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006

डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, **हिंदी ग़ज़ल: उद्भव और विकास**, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1987

डॉ. लल्लन राय, **हिंदी की प्रगतिशील कविता**, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, 1989

डॉ. वीरेंद्र सिंह, **बिंबों से झांकता कवि शमशेर**, पंचशील प्रकाशन, जयपुर/दिल्ली, 1983

डॉ. सरदार मुजावर, **हिंदी की छायावादी ग़ज़ल**, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007

डॉ. सुरेश गौतम, **अंतर्गवाक्ष: प्रगति काव्य पुनर्मूल्यांकन,** आलोक प्रकाशन, दिल्ली, 1997

डॉ. हरि निवास पांण्डेय, **प्रगतिशील काव्यधारा और त्रिलोचन**, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2000

डॉ. हरिवंश तरुण (प्रधान संपादक), **ग़ज़ल कैसे लिखें**, साहित्यकार संसद (बिहार), समस्तीपुर, 1997

दिविक रमेश, **नए कवियों के काव्य-शिल्प-सिद्धांत**, पराग प्रकाशन, दिल्ली, 1991

दीक्षित दनकौरी (सं.), **ग़ज़ल: दुष्यंत के बाद**, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009

दुष्यंत कुमार, **साये में धूप**, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011

दूधनाथ सिंह (सं.), **एक शमशेर भी है**, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011

नंदकिशोर नवल, **कविता: पहचान का संकट**, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2012

नंदकिशोर नवल, **शब्द जहां सक्रिय हैं**, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1986

नामवर सिंह (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, **प्रतिनिधि कविताएं**, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2003

नामवर सिंह, **आधुनिक कविता की प्रवृत्तियां**, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2011

नामवर सिंह, **कविता के नए प्रतिमान**, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990

निदा फाजली, **दुनिया जिसे कहते हैं**, संवाद प्रकाशन, मुंबई/मेरठ, 2009

न्गुगी वा थ्योंगो, **औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्ति: शिक्षा और संस्कृति की राजनीति**, (सं. व अनु. आनंद स्वरूप वर्मा), ग्रंथशिल्पी, नई दिल्ली, 1999

न्गुगी वा थ्योंगो, **भाषा, संस्कृति और राष्ट्रीय अस्मिता** (सं. व अनु. आनंद स्वरूप वर्मा), सारांश प्रकाशन, दिल्ली, 1999

प्रकाश पंडित (सं.), **इक़बाल और उनकी शायरी**, राजपाल एंड संज़, दिल्ली, 2008

प्रकाश पंडित (सं.), **साहिर लुधियानवी और उनकी शायरी**, राजपाल एंड संज़, दिल्ली, 2003

प्रदीप 'साहिल' (लिप्यंतरण), **फ़िराक़ गोरखपुरी**, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2001

प्रभाकर श्रोत्रिय, **शमशेर बहादुर सिंह: हिंदी साहित्य के निर्माता**, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 2011

फ़िराक़ गोरखपुरी, **उर्दू कविता**, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1997

महावीर अग्रवाल (सं.), **शमशेर: कवि से बड़े आदमी**, श्री प्रकाशन, दुर्ग, 1994

मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, कांति मोहन 'सोज', रेखा अवस्थी (सं.), साहिर लुधियानवी, **जाग उठे ख़्वाब कई**, पेंगुइन/यात्रा बुक्स, नई दिल्ली, 2010

मौलाना अल्ताफ हुसैन हाली, **मुकदमा-ए-शेर-ओ शायरी**, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1967

रंजना अरगड़े, **कवियों का कवि शमशेर**, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1998

रघुपति सहाय 'फिराक़' गोरखपुरी, **उर्दू भाषा और साहित्य**, हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1969

राजू एम. फिलिप, **त्रिलोचन के काव्य,** यात्री प्रकाशन, दिल्ली, 1985

राम प्रसाद शर्मा 'महर्षि', **ग़ज़ल और ग़ज़ल की तकनीक**, जवाहर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2009

रामविलास शर्मा, **परंपरा का मूल्यांकन**, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2011

रामस्वरूप चतुर्वेदी, **हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास**, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010

लीलाधर मंडलोई (सं.), **कविता के सौ बरस**, शिल्पायन, दिल्ली, 2001

विष्णु चंद्र शर्मा, **काल से होड़ लेता कवि शमशेर का व्यक्तित्व**, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1994

वीरभारत तलवार, **रस्साकशी**, सारांश प्रकाशन, 2006

शमशेर बहादुर सिंह, **उदिता: अभिव्यक्ति का संघर्ष**, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1980

शमशेर बहादुर सिंह, **कुछ और कविताएं**, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1961

शमशेर बहादुर सिंह, **चुका भी हूं नहीं मैं**, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1975

सरदार मुजावर (सं.), **हिंदी ग़ज़ल का वर्तमान दशक**, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001

सरदार मुजावर (सं.), **हिंदी ग़ज़ल की नई दिशाएं**, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000

सरदार मुजावर (सं.), **हिंदी ग़ज़ल: ग़ज़लकारों की नज़र में**, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001

सविता भार्गव, **कवियों के कवि शमशेर**, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, 2004

साहिर लुधिनायवी, **तल्ख़ियां**, स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1974

हजारी प्रसाद द्विवेदी, **हिंदी साहित्य: उद्भव और विकास**, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011

पत्र-पत्रिकाएं

अनभै सांचा, सं. द्वारिका प्रसाद चारूमित्र, वर्ष-4, अंक-16, अक्तूबर-दिसंबर, 2009

अनभै सांचा, सं. द्वारिका प्रसाद चारूमित्र, वर्ष-6, अंक-24, अक्तूबर-दिसंबर, 2011

आजकल, का. सं. प्रवीण उपाध्याय, वर्ष-44, अंक-8, दिसंबर, 1988

आजकल, सं. सीमा ओझा, वर्ष-67, अंक-6, अक्तूबर, 2011

आजकल, सं. सुरेश चंद्र शर्मा, वर्ष-46, अंक-4, अगस्त, 1990

आलोचना, सं. अरुण कमल, सहस्राब्दि अंक-40, जनवरी-मार्च, 2011

आलोचना, सं. अरुण कमल, सहस्राब्दि अंक-41, अप्रैल-जून, 2011

नया पथ, सं. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, वर्ष-22, अंक-2, अप्रैल-जून, 2008

नया पथ, सं. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, वर्ष-24, अंक-4, अक्तूबर-दिसंबर, 2010

नया पथ, सं. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, वर्ष-25, अंक-3, जुलाई-सिंतबर, 2011

पक्षधर, सं. विनोद तिवारी, अंक-11, जुलाई, 2011

सापेक्ष, सं. महावीर अग्रवाल, अंक-38, जुलाई-सितंबर, 1997

हंस, सं. राजेंद्र यादव, वर्ष-11, अंक-10, मई, 1997